इंद्रधनुष के बिंब

निकोलाई स्लाद्कोव



रादुगा प्रकाशन · मास्को



लाल स्तेपी		नारंगी खंडहर		पीला टीबा		हरी घाटी



आसमानी झील   नीले पर्वत   बैंगनी दर्रा   लाल टीले



रादुगा प्रकाशन · मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

निकोलाई स्लाद्कोव

इंद्रधनुष के बिंब

लटका है आकाश में इंद्रधनुष सतरंगी –
लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंगनी हैं ये उसके रंग!
इंद्रधनुष से झरते झरने, वर्षा और प्रकाश के, छोड़ गये धरती पे चिन्ह अपने –
रंग-बिरंगे पर्वत, स्तेपी, टीले और घाटियां।
इंद्रधनुष को तोरण मानो, रखो डग धरती पर बहुरंगी, जहां जीव विचरते हैं सतरंगी।



अनुवादक : विनय कुमार शुक्ला
फ़ोटो : निकोलाई स्लाद्कोव, इज़्माइल मुख़िन, अलेक्सान्द्र लुख़्तानोव
डिज़ाइनर : इन्ना बोरीसोवा

Н. Сладков
ДЕТИ РАДУГИ
На языке хинди

N. Sladkov
RAINBOW WORLD
In Hindi

सोवियत संघ में प्रकाशित

ISBN 5-05-002415-3

अनुक्रम





लाल स्तेपी



एक रात में दूरी पर लालिमा छा गयी। कल तक सब कुछ धूमिल हरा था और आज सुदूर नीले पर्वतों की तलहटी में लाल धारियां पड़ गयीं – अजीब और अचानक। मानो किसी ने मोटी लाल पेंसिल से रेखा खींचकर नीले पर्वतों को हरी स्तेपी से अलग कर दिया।

नहीं, यह सूर्य की लालिमा नहीं थी, न ही लाल पत्थर बिखरे पड़े थे और न ही सुदूर दावानल की लालिमा थी।

हमारे घोड़े दौड़ते जा रहे थे। रहस्यमय लाल धारी अधिकाधिक चमकती, चौड़ी होती पास आती जा रही थी। अरे, यहां तो लाल दहकते पोस्त के फूलों की बाढ़ आयी हुई है!

पोस्त के खिलते फूल, जहां देखो वे ही नज़र आते हैं, लाखों-करोड़ों फूल! लाल फूलों का सैलाब-सा आ गया। हवा में लहलहाते पोस्त के फूल अनोखे दावानल की लपटों के समान लग रहे हैं। पोस्त के लाल फूलों से आंखें चुंधिया रही हैं और सिर में चक्कर आ रहे हैं।

पोस्त के फूलों से ढकी लाल चढ़ाइयां – सिंदूरी सागर की लहरों की तरह लग रही हैं। लाल लहरें सांय-सांय करती हवा के साथ हिलोरें ले रही हैं, उनके शिखरों पर दहकती पंखुड़ियों का फेन उबल रहा है। लगता है कि ये लहरें बस अभी हमें थपेड़ा मारकर उलट देंगी और हम लाली के इस रक्तिम सागर में डूब जायेंगे!

पांव फूलों से दहकती धरती पर पड़ रहे हैं। लाल स्तेपी मानो धधक रही है। स्तेपी में विचरनेवाले शिकरे लाल लहरों के ऊपर फिसलते-से लगते हैं और उनके सफ़ेद डैने गुलाबी आभा से ढके हैं। लाल गुबरैले लाल पंखुड़ियों को कुतर रहे हैं। मरकती पतेना पक्षी लहरों की फुनगियों के ऊपर अजीब-सी उड़न मछलियों की तरह फुदक रहे हैं। और घोड़ों की काली पुतलियों में लाल बिजलियां कौंध रही हैं।

सफ़ेद बादल तक गुलाबी हो गये। स्तेपी पर लटके नीले आकाश तक में गुलाबी धुंध-सी छा गयी। फूलों का असीम सागर फैला है! लाल रंग की बाढ़ आयी है, लाल दमकते फूलों का लावा फूट पड़ा है!







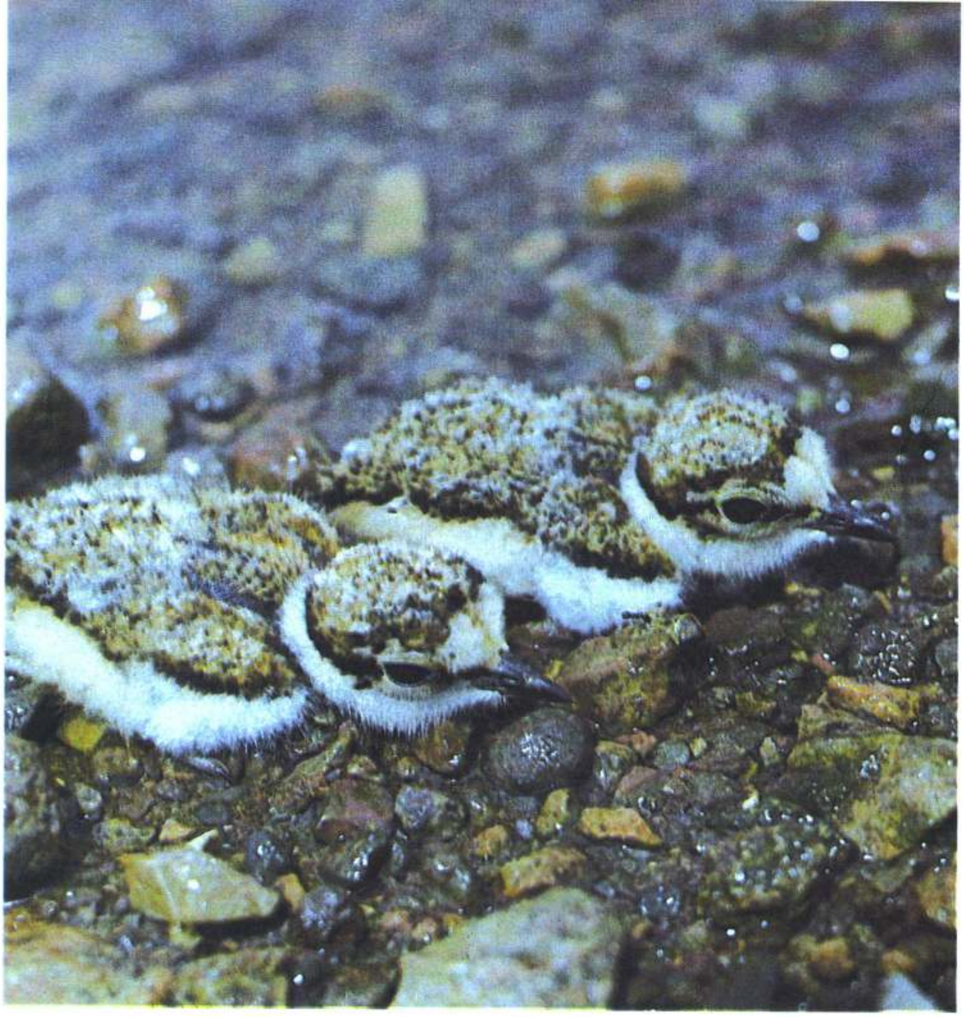


श्वेतकंठ

भूरे श्वेतकंठ की चोंच इतनी नन्ही होती है कि मुश्किल से एक मक्खी ही उसमें समाती है। ऐसी चोंच से कितना खाना लाया जा सकता है! और घोंसले में तो पूरे पांच बच्चे हैं, ऊपर से हरेक का मुंह ख़लते की तरह खुला हुआ। उसमें जितना डालो – उतना ही कम! सब बेसब्री से चिल्लाते हैं: "मुझे! मुझे! मुझे!"

बेचारी श्वेतकंठ पंख पर पंख धर कर नहीं बैठती: हरेक को तीस नाश्ते, तीस लंच और तीस डिनर जो चाहिए! और ख़ुद को एक कीड़ा तक पेट में डालने की फ़ुर्सत कहां।

और आराम करने में कितना मज़ा आता! पंख संवार लेती, छाया में दुबककर ऊंघ लेती। आकाश की ओर देखती कि कहीं कोई बाज़ या शिकरा तो नहीं है? कहीं कोई लोमड़ी या वीज़ल तो घात नहीं लगाये बैठा? पर बच्चे बेसब्री से कंपकंपाते हुए, मुंह फाड़े चिल्ला रहे हैं: "मुझे! मुझे! मुझे!" जल्दी करनी चाहिए, और फिर घोंसले से जाने और घोंसले में आने का क्रम तेज़ हो जाता है। कम से कम चोंच ही कुछ बड़ी होती नहीं तो एक मक्खी पांच के लिए क्या होती है! बस भूख और बढ़नी ही है...



जीरा

जलधारा के किनारे-किनारे मादा जीरा चक्के की तरह लुढ़कती जा रही है, और उसके पीछे-पीछे चलते बच्चे टांगोंवाले बटनों की तरह दौड़ रहे हैं। मां जीरा फुदककर जलधारा के उस पार चली गयी और बटनों जैसे बच्चे हड़बड़ाकर तट पर इधर-उधर दौड़ने लगे। अगर बाज़ ने देख लिया तो क्या होगा?

"ची-ऊ!" मां चिल्लायी, "लेट जाओ!"

जीरा के बच्चे झट से लेटकर दुबक गये। पानी में वे कंकड़ों की तरह पड़े थे।

मैं पास गया – वे लेटे ही रहे, पास में बैठ गया, पर उन्होंने हिलने का नाम तक न लिया। मैं तो आराम से बैठा हूं पर इन बेचारों का पानी में क्या हाल होगा! ठंडा पानी पंख गीले कर रहा है, कंकड़-पत्थर पेट में चुभ रहे हैं। पर जीरा के बच्चे सब कुछ सह रहे हैं – मां का कहना जो मानते हैं!

चलो, अब और नहीं लेता इनकी परीक्षा: आखिर वे नन्हे-से ही तो हैं और अभी दुर्बल भी हैं। आज्ञापालन की परीक्षा में से सफल उतरे। शाबाश! एक भी बाज़ उन्हें नहीं देख पाया।

मैं उठकर जल्दी-जल्दी चला गया। कहीं उन्हें ज़ुकाम न हो जाये...







फफोला भृंग

जैसे किसी वन में लाल रंग के विषैले कुकुरमुत्ते जगह-जगह नज़र आते हैं वैसे ही स्तेपी में फफोला भृंग या ब्लिस्टर बीटल दिखाई पड़ते हैं। वे लड़ियां बनाकर जगह-जगह लटके रहते हैं। किसी से नहीं डरते!

उलटे सब उनसे डरते हैं और उनको देखकर कन्नी काटते हैं। जानवर बचकर दौड़ जाते हैं, पक्षी उन्हें देखकर मुंह मोड़ लेते हैं, छिपकलियां रेंगकर दूर चली जाती हैं, मेढ़क तक नहीं ललचाते।

फफोला भृंग यूं ही विषैले कुकुरमुत्तों जैसे नहीं लगते – वे खाने लायक नहीं हैं और विषैले हैं। और उनका चटक लाल रंग सबके लिए ख़तरे की लाल बत्ती की तरह कहता है: पास मत आओ, मुझे मत छेड़ो!

और उन्हें कोई नहीं छेड़ता। अगर कोई बेवकूफ़ी से उन्हें दबोच ले या घास के साथ खा जाये तो मर तक सकता है। पक्षी भी और छिपकली भी। गाय भी और घोड़ा भी। ऊंट तक मर जाता है!





सारस

स्तेपी में करकटिया सारस नाच रहा है। उसकी कनपटियों पर दो वेणियां – रेशम जैसी सफ़ेद लटें झूल रही हैं। हवा उन्हें सहलाती है, फड़फड़ाती है, कभी अचानक उन्हें उड़ाकर सीधा खड़ा कर देती है, और दूर से लगता है कि करकटिया रूमाल हिला रहा है।

पर मादा सारस नर्तक की ओर ध्यान ही नहीं दे रही।

पर नर्तक तो नाचने में मग्न है! उसका बदन थिरक रहा है, पंख अस्त-व्यस्त हो गये। अगर उसके पंख टीन के बने होते तो ऐसी टनटन-खड़खड़ होती कि पूछो मत! वह देखो झुक-झुककर छोटे-छोटे डग भर रहा है, देखो-देखो कैसे डैनों को ज़मीन पर घसीटता टर्की-मुर्ग़ की तरह फूलकर कुप्पा हो गया! और फिर दौड़कर जड़वत् खड़ा हो गया, ठूंठ की तरह। फिर ज़मीन पर पसरकर तड़पने लगा – 'स्वान लेक' बैले के मरते राजहंस की तरह।

और अब फिर से थिरक-थिरककर नाच रहा है, फिर से चौड़े डैने ज़मीन पर घिसट रहा है, टर्की-मुर्ग़ की तरह फूलकर कुप्पा हो रहा है। हवा उसकी रेशमी वेणियों को लहरा रही है।

...पर मादा सारस कहीं और ही देख रही है!




टीसा

असली स्तेपी में तोदों और टीलों पर ज़रूर टीसों को बैठा होना चाहिए। टीसों के बिना भी भला स्तेपी कोई स्तेपी होती है! क्षितिज पर तपिश की धुंध होनी चाहिए, उबड़-खाबड़ स्थानों पर सफ़ेद फ़ैदर घास को लहलहाना चाहिए और दूरी पर पोस्त के फूलों की लाल-लाल धारियां होनी चाहिए। और सर्वत्र टीसों का होना ज़रूरी है। चाहे वे बैठे हों या गर्म हवा की ऊपर उठती-चकराती धाराओं में डैने फैलाकर तैरते शीतल आकाश में ऊंचे उड़ते जा रहे हों।

नीचे करकटिया सारसों की जोड़ी – नहीं, वे उसके लिये नहीं हैं। जल-धारा के किनारे जीरा के बच्चे दौड़े और फिर दुबककर छिप गये – उन्हें ढूंढ़ने के लिए बेकार ही आंखों पर ज़ोर डालना पड़ेगा। लाल-लाल फफोला भृंग दिखाई पड़ रहे हैं पर वे तो कुनैन की गोली से भी बदतर हैं। अरे, वह बीहड़ के पास क्या हिला? गोफ़र घास में उछल-कूद कर रहा है! चलो, चलो इसे अपने बिल से ज़रा दूर जाने दो, ज़रा मीठी घास ढूंढ़ ले, ज़रा आनंद में मस्त हो जाये। तब डैनों को समेटकर, पंजे फैलाकर बिजली की तरह ऊंचाई से झपटना चाहिए। क्या पता सफलता ही हाथ लगे...



पारुसनिक तितली



इस तितली के पर तो तिरछे पालों की तरह है! स्तेपी की गर्म हवा की लहरों पर वह नन्हे-से जहाज़ की तरह अपने पाल फैलाकर तैरती-इतराती रहती है। रूसी में इस तितली को व्यर्थ ही पारुसनिक – यानी पालदार जहाज़ नहीं कहा जाता।

पारुसनिक तितली फूलों पर बैठी बड़ी सुंदर लगती है। जब पर बंद होते हैं तब भी अच्छी लगती है, पर जब उन्हें फैला लेती है और भी सुंदर लगती है।

गर्मी भर ये तितलियां घाटियों, खड्डों और ढलानों की शोभा बढ़ाती हैं। जब भी और जहां भी वे दिखाई पड़ें बस उन्हें देखकर आनंद ही आनंद आता है। न जाने क्यों उन्हें जाल से पकड़कर आलपिनों में पिरोया जाता है!



"यह कैसे हो सकता है!" इन नारंगी खंडहरों को देखकर मैं अपने से बोला। "नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता!"

पर था ऐसा ही। डूबता सूरज चटक नारंगी अजूबे की एक-एक रेखा को उभार रहा था। पिरामिड, मीनारों, बुर्जों को, स्तंभों, दीवारों, खड्डों और शिलाओं को। विचित्र आकृतियों को देखकर आंखें एक जगह टिक ही नहीं पा रहीं, रंगों की दमक से चौंधिया रहीं।

भूरी नीरस स्तेपी के आंचल पर यह नारंगी स्वप्न लोक आया कहां से? किसी पूर्वी परीकथा का दृश्य है। पर वास्तव में यह रंगीन मिट्टी है जिसे सूरज, बारिशों और हवा ने काट-तराशकर यह रूप दिया है। यह महान चितेरी – प्रकृति – की सृष्टि है। सब यथार्थ है, मरीचिका नहीं।

मैं टेढ़े-मेढ़े किनारों पर हाथ फेरता हूं। तपे तोदे आग उगल रहे हैं। धूल की मोटी परत पदचापों के स्वर को सोख रही है।

नारंगी खंडहर

मैं सब कुछ देखने, याद करने, स्मृति में संजोने की जल्दी में हूं। पर करूं कैसे याद जब सब देखते-देखते बदलता जा रहा है! दो कदम चला नहीं कि चारों ओर बिल्कुल दूसरे स्तंभ, कोने और कगूरे, दूसरे खंबे और आले प्रकट हो गये। सूरज कुछ और नीचे गया और फिर से सब कुछ बदल गया: नयी आकृतियां चमक उठीं, नये गह्वरों के काले मुख दृष्टिगोचर हुए। और रंग भी तो विविध हैं: कहीं हल्का सिंदूरी, कहीं नारंगी, कहीं पीला-सा। अच्छा, तो सूरज भी चित्रकार है!

भोर के समय नारंगी खंडहर प्रातःकालीन शीतल धुंध में नहाये होते हैं। दोपहर को, जब सूर्य और आकाश तपकर सफ़ेद हो जाते हैं, खंडहर भी तपने लगते हैं, वे तपती धुंध में मानो पिघलकर पीली अस्थिर लहरों की तरह बहने लगते हैं। और शाम को वे सूर्यास्त के गहरे सिंदूरी-नारंगी रंग में सराबोर हो जाते हैं।

हज़ार वर्षों के दौरान प्रकृति ने पीली मिट्टी से इस अजूबे की रचना की। उसे लेपा, तराशा, उकेरा, काटा। और अब वह आपके सामने खड़ा है। अब चाहे हज़ार वर्ष तक खड़े होकर देखते रहो...







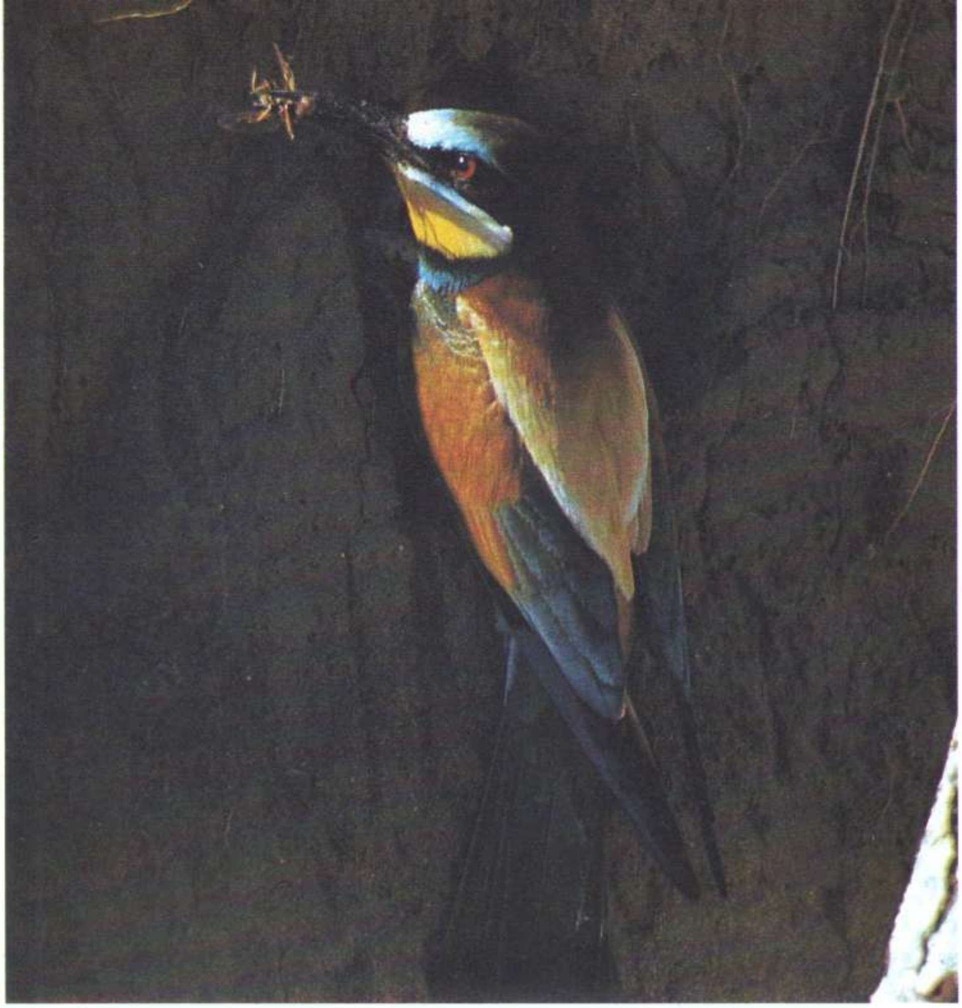
हुदहुद

उड़ते समय हुदहुद एक बड़ी तितली की तरह लगता है, और ज़मीन पर बैठा – एक विचित्र फूल की तरह। उसकी कलगी के कारण उसे कभी-कभी जंगली मुर्गा भी कहा जाता है। निःसंदेह उसकी लम्बी और पतली नाक पर फ़ौरन सबकी नज़र पड़ती है।

हुदहुद को सभी दरारों-छिद्रों में अपनी लम्बी नाक घुसेड़ने में बड़ा मज़ा आता है! और छिद्र तो संकरे होते हैं, मिट्टी कड़ी और पत्थर पैने – बेचारी नाक को क्या-क्या सहना पड़ता है। पर क्या करे, अगर शिकार छेदों, दरारों में दुबककर बैठा होता है?

ज़मीन में काला छिद्र है, उसकी गहराई में मकड़ी का जाला चमक रहा है। अगर उसे खींचा जाय तो क्या होगा? उसने बस यों ही उसे पकड़कर खींचा। अरे, मकड़ी तो छेद के बाहर निकल आयी! उसे शायद लगा कि जाले में कोई टिड्डा-विड्डा फंस गया है। बस, हुदहुद ने मकड़ी को हड़प लिया।

और उसे इसका चस्का पड़ गया। किसी छेद में मकड़ी का जाला देखते ही उसे खींचने लगता है, जैसे ही मकड़ी बाहर आती है उसे निगल जाता है। न किसी मेहनत की ज़रूरत है, न किसी चिंता की। और नाक को भी आराम रहता है।

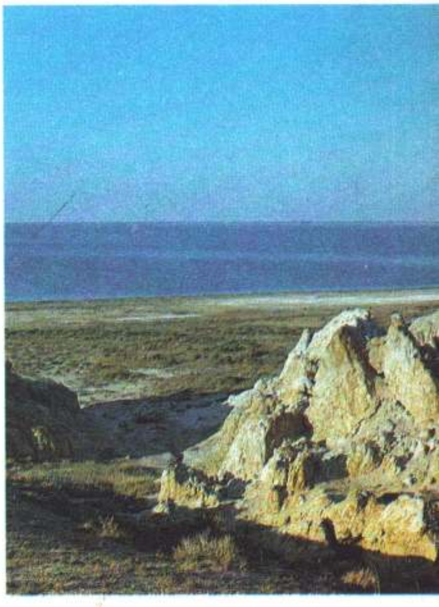


पतेना

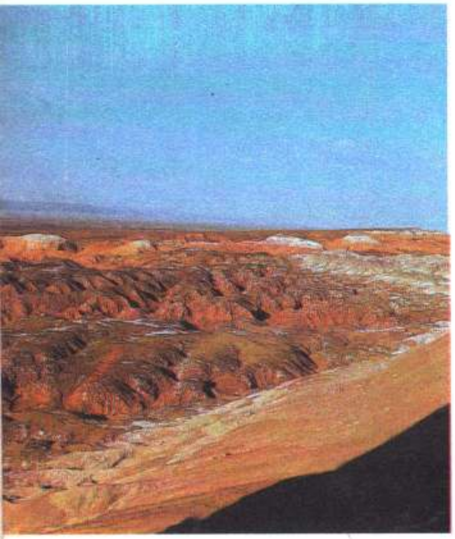
पतेने की पीठ सुनहरी ग्रौर छाती मरकती-नीली होती है। बहुत सुंदर पक्षी है। बाकी सब तो ठीक है पर पतेने का एक ग्रौर नाम भी है – मक्षिका-भक्षी। यह नाम उसे शायद मधुमक्खीपालकों ने दिया है। पतेना पक्षी छत्तों के पास जाकर मधुमक्खियों को पकड़कर खाते हैं। इसीलिए मधुमक्खीपालक उन्हें गोलियों से मार डालते हैं।

निःसंदेह शहद के प्रेमी बहुत हैं। पर मक्षिकाभक्षियों के प्रेमी भी कम नहीं हैं। ग्रौर पतेने केवल मधुमक्खियों का ही नहीं, बल्कि हानिकर कीड़े-मकोड़ों ग्रौर टिड्डियों का भी शिकार करते हैं। मधुमक्खियों के जानी दुश्मनों – वरटों तक का शिकार करते हैं।

मधुमक्खीपालक सज्जनो ग्रौर शहद के प्रेमियो! ग्रपनी बंदूकें छिपा दीजिये ग्रौर टेपरिकार्डरों से लैस हो जाइये। पतेनों को गोली चलाकर नहीं बल्कि ख़तरे के संकेत की रिकार्डिंग चलाकर छत्तों के पास से खदेड़िये। बांस का भी सहारा लिया जा सकता है। ग्रापका भी फ़ायदा होगा ग्रौर पतेनों को भी कोई नुक़सान नहीं पहुंचेगा।



पतेनों को मारना नहीं बल्कि उनसे प्यार करना चाहिए। उनके रूप, उनके रंग, उनके मधुर स्वर का ग्रानंद लेना चाहिए।





अगामा



धुंधली सुबह को अगामा छिपकली का मूड भी बिगड़ा हुआ है। आख़िर सारी रात ठिठुरती रही, भूख भी बड़ी ज़ोर की लगी है। इसलिए नाक से लेकर दुम तक रंग भी उसका सलेटी है। फ़ौरन पता चल जाता है कि खिन्न है।

पर सूरज जल्दी से रेत और पत्थरों को गर्म कर देगा। हां, अब बदन में गर्मी आ गयी, अब तो झाड़ी पर चढ़ा जा सकता है। झाड़ी पर चढ़कर अगामा का मूड बेहतर हो जाता है। और पीठ पर ललौंही चित्तियां पड़ जाती हैं। वैसे ही जैसे आनंद से हमारे गालों पर लाली छा जाती है।

दोपहर तक तो अगामा के जोड़-जोड़ में, एक-एक चकत्ते में गर्मी का संचार हो जाता है। और अगर एक आध टिड्डा पेट में पहुंच गया, तो क्या कहने – देखते-देखते खिल उठेगी! पूरी चाकलेटी और क्रीमी डिज़ाइनों से ढक जायेगी और बगलों पर बैंगनी धब्बे चमकने लगेंगे। और अगर यह नर अगामा है तो उसके गले पर बड़ी नीली दाढ़ी फूलकर लटक जायेगी! गर्मी, उत्तेजना और आनंद से। फ़ौरन पता चल जायेगा कि मूड बड़ा रंगीन है।



गोफ़र

लम्बी पूंछवला गोफ़र बड़ा झगड़ालू है। किसी को देखते ही झगड़ा कर बैठता है। किसी तोदे या पत्थर पर चढ़कर चीखने-चिल्लाने लगता है, उछल-उछलकर, कांप-कांपकर। ज़ोर-ज़ोर से। पूंछ भी ग़ुस्से में पटकता है। इतना पेटू है पर खाने की सुध तक खो बैठता है। मुंह में घास का गुच्छा दबाये ही चिल्लपों करता रहता है, घास की पत्तियां लम्बी-लम्बी मूछों की तरह फड़फड़ाती है!

ऐसे को भला कहीं सोते में पकड़ा जा सकता है। पर ख़ुद वह केवल बालियों के लिए ही ख़तरनाक है, वह भी वहां जहां अनाज की फ़सल बोयी गयी हो। पर उसे तो निर्जन खड्डे, पुरानी मेढ़ें, सड़क के किनारे पसंद हैं – मतलब बेकार, निर्जन ज़मीन। यहां वह कभी गिलहरी की तरह फुदकता है, कभी ख़रगोश की तरह पिछली टांगों पर खड़ा हो जाता है तो कभी मार्मोट की तरह पसर कर लेट जाता है। कभी चिड़िया की तरह सीटी बजाता है तो कभी नन्हे सूअर की तरह चीं-चें करता है।





भाला सांप

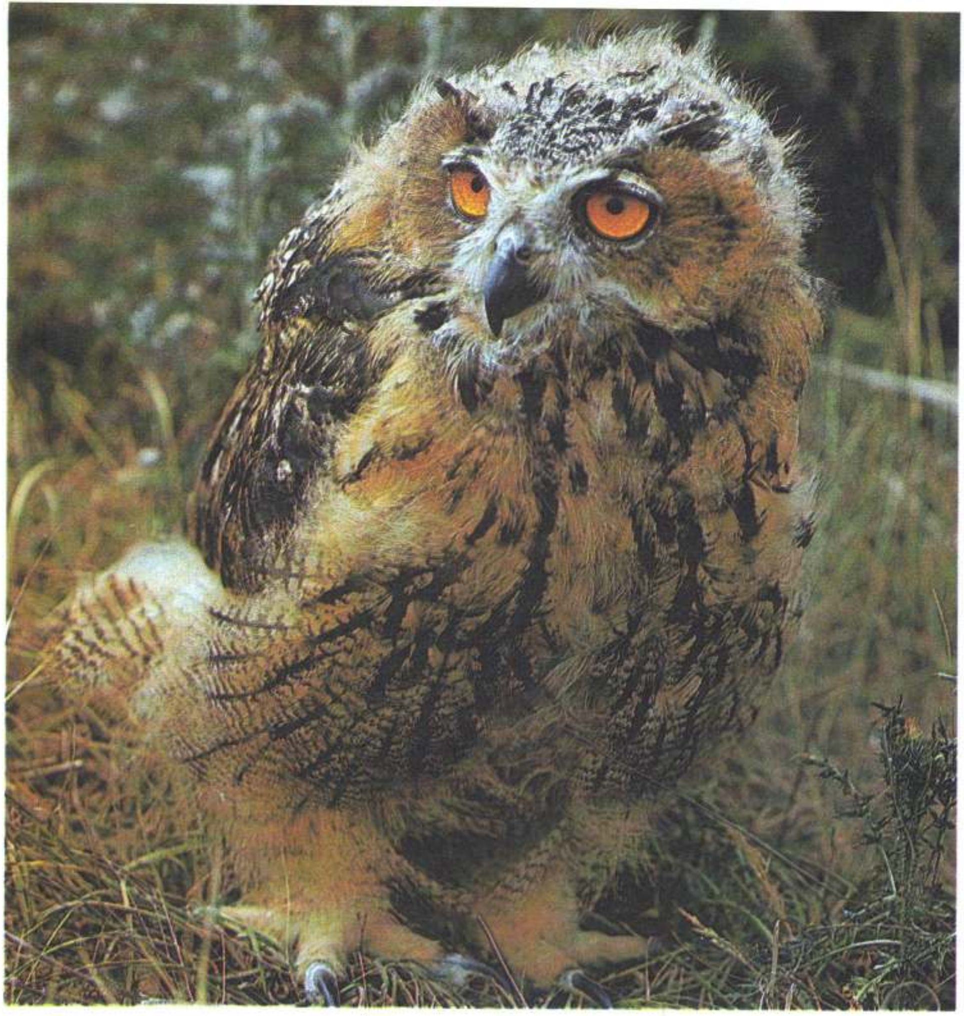


शाम को जब सूरज नीचे ग्राकर बगल से किरणें डालता है किसी दूरस्थ झाड़ी पर ग्रचानक कोई ग्रजीब-सी चमकती चीज़ नज़र ग्राती है, मानो किसी ने झाड़ी पर टीन का डिब्बा लटका दिया हो। पर यह तो धूप सेंकता भाला सांप है! वैसे क्या पता वह धूप सेंक रहा है या दिन भर की तपिश के बाद शाम की शीतल हवा का ग्रानंद ले रहा है। क्या पता वह ग्रपनी जागीर का मुग्रायना कर रहा हो?

पक्षियों जैसी उसकी गोल ग्रांखों से कुछ नहीं बचता: कौन ज़मीन पर दौड़ रहा है, कौन ग्राकाश में मंडरा रहा है।

तोलाई ख़रगोश लड़खड़ाता हुग्रा झाड़ी की छाया में ग्राकर लेट गया। रेगिस्तानी मूषक बिल से बाहर झांका, उसकी मूंछें चमक रही हैं। सर्पभक्षी उकाब उड़ता हुग्रा गया, ख़ैर है कि उसने देखा नहीं। ग्रौर ग्रंततः यह ग्राया वह जो सदा मनोवांछित है – छिपकली!

भाले ने निशाना बांधा ग्रौर ख़ुद छूटा: लहराकर वह चमका ग्रौर छिपकली को दबोच कर स्प्रिंग की तरह मुड़कर टहनियों की छाया में लुढ़क गया। परायी ईर्ष्यालु नज़रों से दूर।





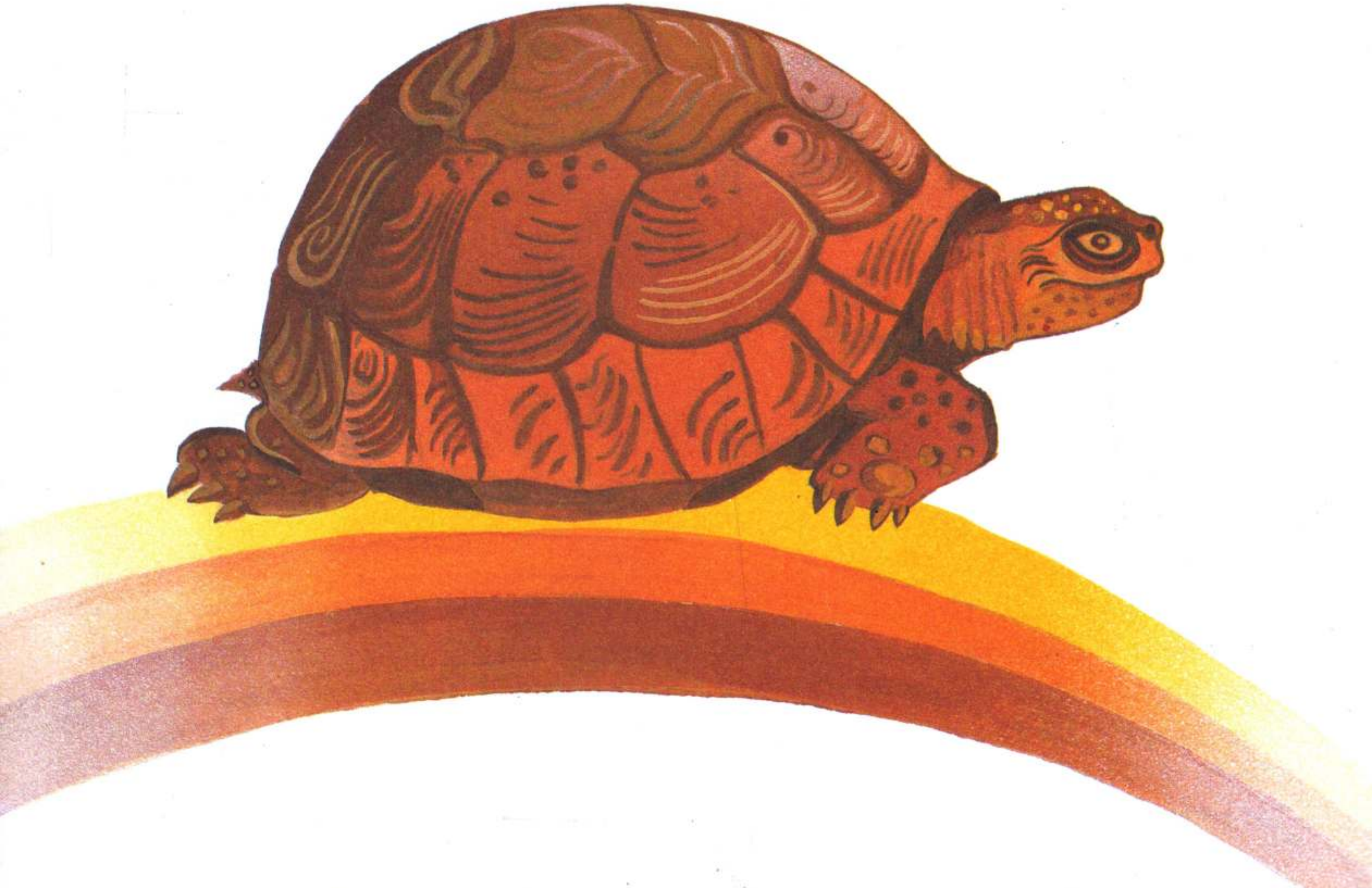
नन्हा उल्लू

उलूका ने दो अंडे दिये : सफ़ेद, गेंद की तरह गोल। और उन्हें सेने लगी। वह अंडों पर बैठी है पर उसे पता नहीं कि उसके नीचे क्या हो रहा है। अरे, घोंसले में अंडे दिन पर दिन... घटते जा रहे हैं! दिन पर दिन हल्के होते जा रहे हैं।

जब अंडे दिये थे वे सत्तर-सत्तर ग्राम के थे। और दस दिन बाद हरेक का भार पांच-पांच ग्राम घट गया। बीस दिन के बाद उनका भार एक चौथाई घट गया! अगर यही हाल रहा तो अंत में केवल अंडे का छिलका ही बचेगा।

पर ऐसा नहीं हुआ – शीघ्र ही अंडों से नन्हे-नन्हे उल्लू निकले। और वे फ़ौरन कमी को पूरा करने में जुट गये। हर घंटे उनका वज़न दो ग्राम बढ़ने लगा!

इन पक्षियों की भूख बहुत बड़ी होती है। चौथे दिन उनका वज़न दुगना हो गया और सातवें दिन तो – पूरा आठ गुना! और घोंसले से बाहर निकलने से पहले तो उन्होंने अपने वज़न की दृष्टि से अपने पापा-मम्मी उल्लू-उलूका को भी पिछाड़ दिया! उन्हें भला अब नन्हा बच्चा कहा जा सकता है, हालांकि वे अभी रोयों से ढके हैं और उड़ना उन्हें नहीं आता।



सूरज ऐसे झुलसा रहा है मानो उसकी किरणें किसी आतशी शीशे से होकर पड़ रही हों। पसीने से आंखों में जलन हो रही है। हमेशा प्यास की मारी रेगिस्तानी मक्खियां चेहरे पर चिपक रही हैं। नीचे असीम स्तेपी है और ऊपर असीम आकाश।

स्तेपी के आंचल पर दो चपटी जामनी पहाड़ियां हैं, मानो दो कछुए सोये पड़े हों। और उनके बीच सुनहरी रेत का ऊंचा पिरामिड है।

दो हवाओं ने सुप्त पहाड़ियों के पास टकरा-टकरा कर यह विराट टीबा बनाया है। उसकी चोटी बदरंग आकाश में ज्वालामुखी की तरह धुआं-सा छोड़ रही है।

चोटी पर चढ़ने के लिए सबसे उचित स्थान कटक है। धीरे-धीरे ऊपर चढ़ते हुए लगता है कि मानो ढलवां छत पर चढ़ रहे हो। रेतीली हवा की ललौंही जिह्वाएं पैरों से लिपट रही हैं, ढलानों को चाटकर सपाट बना रही हैं, शिखर से टकराकर फव्वारों की तरह फूट रही हैं।

यहां बेहद प्यास लगी है। पर पानी बहुत दूर है, कानों में लू सीटियां बजा रही है और दांतों में रेत किर-किरा रही है।

टीबे की आवाज़ सुनने की भी इच्छा हो रही है। आख़िर यह साधारण नहीं बल्कि गानेवाला टीबा है। समय-समय पर उसकी गहराई में भयावह गरज होती है और टीबा कांपने लगता है। गरज बढ़ती जाती है और फिर उसके गर्भ से फूटकर स्तेपी में अजीब-सी दबी-दबी, आशंकापूर्ण गूंज फैल जाती है।

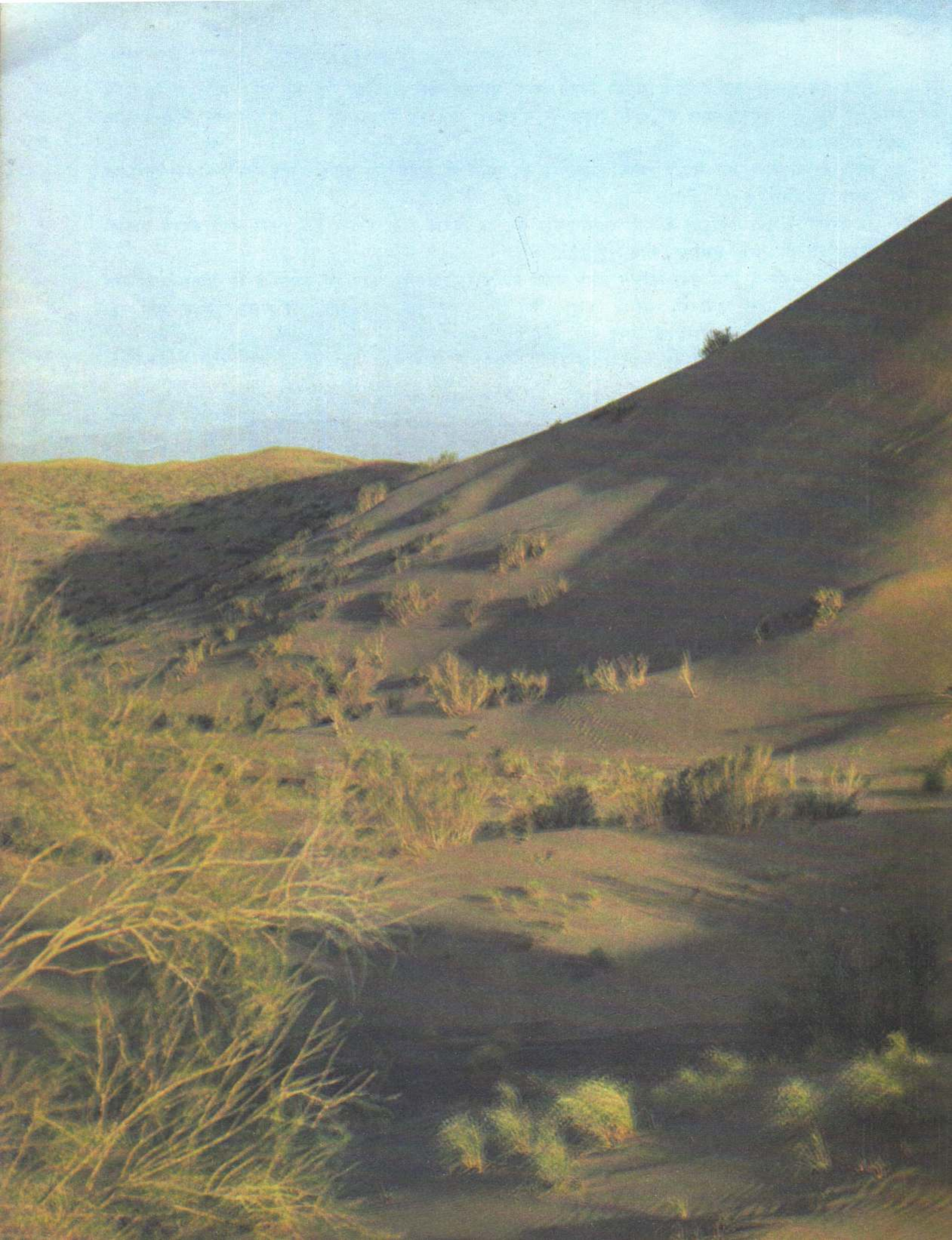
इसीको कहते हैं टीबे का 'गाना'।

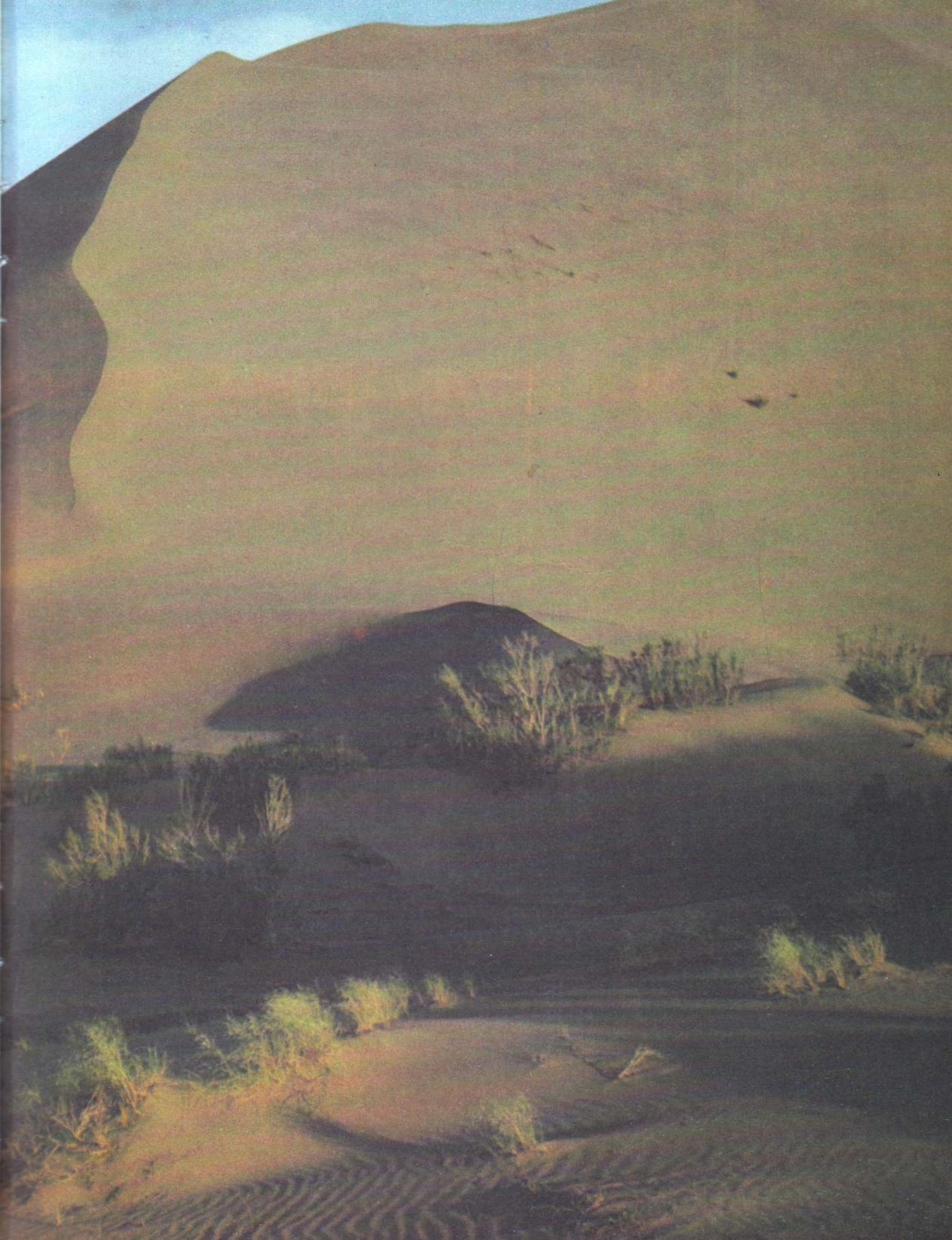
टीबे के बारे में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं।



पर किसी को यह ढंग से नहीं मालूम कि क्यों रेत का यह पहाड़ गाता है? बस तरह-तरह की अटकलें और अनुमान ही लगाये जाते हैं।

हम चोटी पर खड़े हैं। आज टीबा शांत है। बस हवा ही सांय-सांय कर रही है और सूरज आग बरसा रहा है। धूप और तेज़ हवा के कारण आंखों से पानी बह रहा है। और आंसूचूस मक्खियां चेहरे को गुदगुदा रही हैं।







अजगर

नहीं-नहीं यह अजगर नहीं है, इसकी तो लम्बाई एक मीटर से अधिक नहीं होगी। पर बाक़ी सब अजगर जैसा है। और पता है कैसा? रेत के अंदर ही अंदर रेंगता जाता है! नन्हा हुआ तो क्या हुआ?!

और वह घात में बैठा प्रतीक्षा कर रहा है। बस रेत के बाहर आंखें निकालकर देख रहा है। ख़रगोश का बच्चा फुदक रहा है, पर काफ़ी दूर है। सकसाउल की झाड़ी पर चिड़िया बैठी है, पर बहुत ऊंचाई पर है। रेगिस्तानी बिलाव – स्याहगोश दबे पांव चल रहा है, इधर-उधर ताकता हुआ, वह दिन की धूप में चलने का आदी नहीं है। तेज़ प्रकाश के कारण आंख की पुतलियां बिल्कुल सिकुड़ी हुई हैं: क्या पता उसकी नज़र न भी पड़े। यह बिल्ला केवल चूहों को ही नहीं बल्कि बड़े मकड़ों और बिच्छुओं, छिपकलियों और सांपों – सब को पकड़कर हड़प कर जाता है।

शऽऽ! – गोल सिरवाली बेवकूफ़ छिपकली इधर ही आ रही है। आने दो पास, और पास, अब तो बिल्कुल ही पास आ गयी। रेत हिली, सांप उछलकर रस्सी की तरह छिपकली से लिपट गया। और मौत का फंदा कसता ही गया...



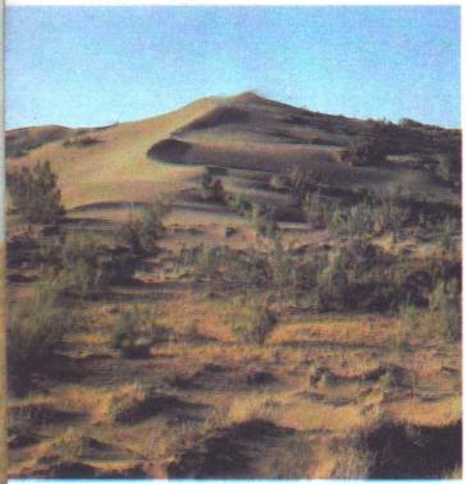
जर्बोआ

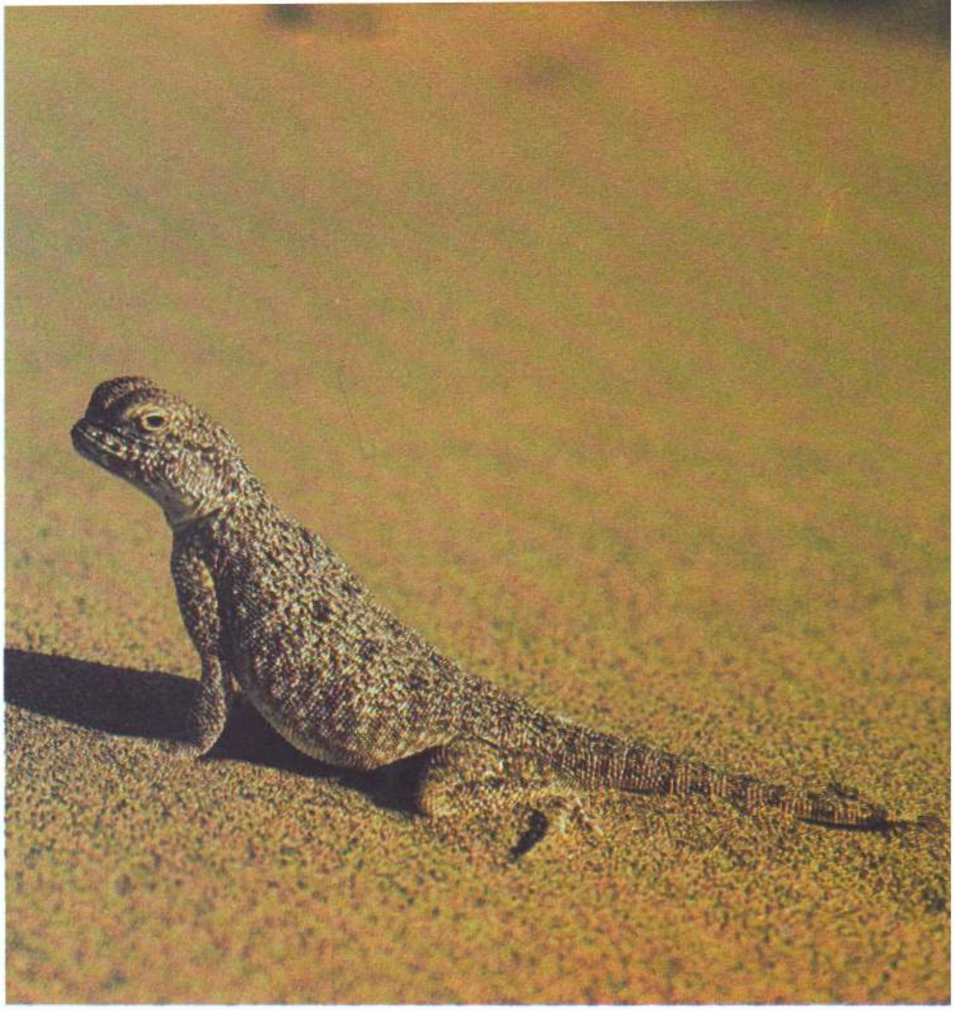
जर्बोआ बड़ा विचित्र प्राणी है, उसका एक और नाम है हिरन-मूसा। धड़ चूहे का, कान ख़रगोश के, टांगें कंगारू की और दुम गुच्छेदार, जैसे शेर की होती है! दिन में सोता है और रात को दौड़ता फिरता है। और दौड़ता भी कैसा है!



जर्बोआ का हर अंग बड़ा विचित्र होता है, दूसरे पशुओं से बिलकुल भिन्न। जीव-जंतु पतली टांगोंवाले, मोटी टांगोंवाले, लम्बी टांगोंवाले होते हैं पर जर्बोआ... रोयेंदार टांगोंवाले होते हैं! कुछ जानवर पतली उंगलियों वाले होते हैं, कुछ लम्बी उंगलियोंवाले और जर्बोआ... कुबड़ी उंगलियोंवाले! कुछ जानवर मोटी खालवाले, कुछ मोटे सिरवाले होते हैं पर जर्बोआ मोटी दुमवाले होते हैं।

जर्बोआ की दुम बड़ी काम की होती है। जब जर्बोआ बैठा होता है, तो वह टेक का काम करती है। और जब जर्बोआ दौड़ता है तो वह संतुलन बनाये रखती है। और वह शत्रुओं को झांसा देने का काम भी करती है। लोमड़ी उसकी दुम के सफ़ेद फुंदने पर नज़रें गड़ाकर जर्बोआ का पीछा करती है, पर वह दुम के फुंदने को बायें घुमाकर खुद दायीं ओर कूदता है और चंपत हो जाता है।





गोल सिरवाली छिपकली

गोल सिरवाली छिपकली जीवन भर रेत ही में रहती है और लगता भी ऐसा ही कि वह मानो रेत की बनी हो। रंग भी रेत का, और चकत्ते भी रेत के कणों जैसे हैं। और ऐसी रेतीली छिपकली को रेत में देख पाना आसान नहीं। विशेषकर जब वह रेत से चिपक कर अपनी काली परछाई तक को मिटा देती है। और तो और पूरी रेत में भी घुस जाती है। अचानक नाक से दुम तक थरथर कांपने लगती है और रेत में डूब जाती है, मानो सिर से दुम तक रेत की रज़ाई ओढ़ ली हो।

हम ऊनी कंबल या रूई की रज़ाई ओढ़ते हैं और गोल सिरवाली छिपकली रेत की। हवा का झोंका उसकी सिलवटें दूर कर देता है। अभी-अभी यहां छिपकली थी और अब कोई नहीं रहा। आंखों पर विश्वास नहीं होता! ..



लहटोरा



लहटोरा दूर से ही झाड़ी पर सफ़ेद धब्बे की तरह दिखाई पड़ता है। तुम बिना छिपे खुलकर उसकी ओर जाते हो पर वह अपनी जगह पर बैठा रहता है। और जब बिल्कुल पास पहुंचोगे केवल तभी लहटोरा टहनी से डुबकी लगाकर ज़मीन की सतह को छूता हुआ अपने चितकबरे पंख हिलाता उड़ेगा और फिर तीर की तरह ऊपर उड़कर अपनी निरीक्षण चौकी पर जा बैठेगा।

कंटीली झाड़ी पर उसके खाने का भंडार है। पता है वह अपने लिए क्या-क्या स्वादिष्ट चीज़ें वहां रखता है? कांटों में उसने विभिन्न कीट: गुबरैले, ड्रैगनफ़्लाई, टिड्डे, ततैये पिरो रखे हैं।

यह भंडार काले दिन के लिए है। सच कहें तो मेघाच्छादित, ठंडे दिन के लिए जब कीट-पतंग दुबककर बैठे होते हैं। और लहटोरा के बच्चों को तो रोज़ खाना चाहिए। देखो तो उनमें से एक ने तो खाने का नाम सुनते ही मुंह खोल लिया...



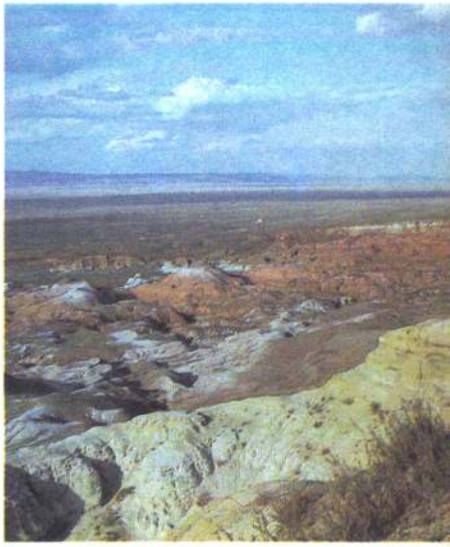
तिलोर

नहीं, यही तिलोर नहीं उसका बच्चा ही है। यह अत्यंत सुंदर और अति विरला पक्षी अरबी नाम हूबारा से भी जाना जाता है। वह सूखी स्तेपियों, ऊष्ण रेगिस्तानों में बच्चे देता है। तिलोर के बच्चों को बड़ा कष्ट सहना पड़ता है: ज़रा तपे तवे पर तो बैठ के देखो! ऊपर से सूरज आग बरसाता है, नीचे से दहकती रेत भूनती है, अगल-बग़ल से लू झुलसाती है।

बेशक, अगर मां-तिलोर पास होती तो कम से कम वह अपनी छाया से ही कुछ राहत दे देती। पर मां-तिलोर आते हुए डरती है, कहीं उसपर और उसके बच्चे पर परायी नज़र न पड़ जाये।

स्तेपी में परायी आंखों की भला कोई कमी है: उकाब, लोमड़ियां, भेड़िये जो विचरते रहते हैं। और तिलोर के बच्चे के लिए तो स्याहगोश और बनबिलाव भी ख़तरनाक हैं। निर्जन से निर्जन, बियाबान से बियाबान स्तेपियों और रेगिस्तानों तक में बहुत कम तिलोर पक्षी बचे हैं। न उनकी तेज़ टांगें, न शक्तिशाली डैने, न पैनी दृष्टि उन्हें शिकार-चोरों से बचा पायी। तिलोरों को सबसे बड़ी आशा अपने संरक्षी रंग पर होती है: ज़मीन से चिपककर लेट जाओ, बिना हिले-डुले, शिकारी शायद पास से निकल जायें, क्या पता उनकी नज़र न पड़े।





गेको

गेको छिपकली का परिधान बड़ा सुंदर है: मछली जैसे गोल-गोल बटनों वाले चमकीले शल्क का। और पतलून के भी क्या कहने, सफ़ेद झालरें लगी हैं। ऐसे कपड़ों में तो कहीं भी जाने में शर्म नहीं आयेगी।

पर हर चीज़ पुरानी पड़ जाती है: कमीज़ घिस गयी, पतलून फट गयी। नये कपड़ों की ज़रूरत है।

बिल में घुसकर, परायी नज़रों से छिपकर, पंजों से फटे-पुराने कपड़े उतारने चाहिए। गेको करता भी यही है, एड़ी चोटी का ज़ोर लगाकर उसने पुराने कपड़े उतारे और नीचे नये चमचमाते कपड़े तैयार हैं! और बटनों की तरह शल्क चमकते हैं, पतलून पर फिर से सफ़ेद-झक झालरें दमक रही हैं।

पर पुराने कपड़े फेंकते हुए दुःख हो रहा है, आख़िर भले-बुरे में साथ दिया उन्होंने। गेको ने अगले पंजों से पुराने कपड़ों की गठरी बनायी और... मुंह में डाल ली! क्यों जाये चीज़ बेकार। कपड़े खाकर जीभ से होंठ चाटे, पुराने थे तो क्या हुआ, किसी काम तो आ गये!



घाटी हरियाली और ओस से ढकी है। बड़े-बड़े गोल पत्थरों के बीच नदी की धारा उफ़न रही है, बर्फ़ीली फुहार को देखकर ही बदन में झुरझुरी दौड़ जाती है। ठिठुरन भरी सुबह है, आकाश स्वच्छ-निर्मल। पहाड़ी हवा का रसपान करते समय दांत किटकिटाने लगते हैं।

प्रातः की चमकीली किरणें पत्तियों से छनकर आ रही हैं; फ़र वृक्षों की टहनियों पर मानो फुलझड़ियां छूट रही हैं। जिधर देखो हरियाली ही हरियाली है। और हरे रंग की विविधता भी देखते ही बनती है: पीले-हरे से लेकर नीले-हरे तक हरे रंग की कितनी निराली छटा है। बर्डोक के बड़े-बड़े पत्ते हवा से गधे के कानों की तरह धीरे-धीरे हिल रहे हैं। ऊंची घास में चलते हुए लगता है मानो घुटनों तक हरे पानी में छप-छप करते चल रहे हो। नीले और पीले छींटों की तरह फ़ार्गेट-मी-नाट और बटरकप पुष्पों की पंखुड़ियां उड़ रही हैं। हरियाली की तो बाढ़ ही आई हुई है!

कठगुलाब की झाड़ियां सफ़ेद, पीली, गुलाबी गोल फुलवारियों की तरह लग रही हैं। दारुहल्दी की झाड़ियां पीले गजरों से सजी हैं। मधुमक्खियां, तितलियां और भृंग उनसे दारुहल्दी का मुरब्बा बना रहे हैं।

सुडौल सरो वृक्षों की रोयेंदार फुनगियां चमक रही हैं। और भी सुडौल फ़र वृक्ष लाल शंकुओं से चितकबरे लग रहे हैं। सलेटी पत्थरों को काई ने विचित्र चित्रों से ढक दिया। और विराट धूपघड़ी की सुई की तरह ऊंचे फ़र वृक्ष की परछाई मैदान में सरकती हुई वन के शांत जीवन की घड़ियों को गिन रही है।

हरी घाटी









चेड़

चेड़ के घोंसले में बच्चों का जन्म हुआ। कल तक दर्जन भर अंडे थे और आज दर्जन भर चूज़े हो गये, डैन्डेलियन के फूलों की तरह रोयों से ढके। लगता है कि डैन्डेलियन पुष्प के चोंच और पांव निकल आये हैं। और वे चोंच चलाने लगे, पांवों पर दौड़ने लगे। और दौड़ते भी तो ऐसे हैं मानो उनकी टांगें नहीं पहिये हों। देखो तो इसका परिणाम हुआ क्या, एक घनी घास में खो गया और दूसरे को जंगली बिल्ली उठाकर ले गयी। हालांकि मां चेड़ ने उनका बड़ा ख़याल रखा, कड़ी चौकसी की, साहस के साथ शत्रुओं से जूझी, घायल होने का नाटक करके उन्हें बच्चों से दूर ले गयी पर एक दिन बाद और दो बच्चे गायब हो गये: एक को लोमड़ी और दूसरे को चील दबोच कर ले गयी।

चेड़ के बाक़ी बच्चे ख़ूब अच्छी तरह से छिपना सीख गये। ख़तरे का आभास होते ही बिखर कर घास में, पत्थर की आड़ में, घनी झाड़ी के नीचे दुबक जाते हैं, ज़मीन से चिपक कर आंखें मूंद लेते हैं और बिना हिले-डुले बैठ जाते हैं। मानो वहां कोई हो ही नहीं।



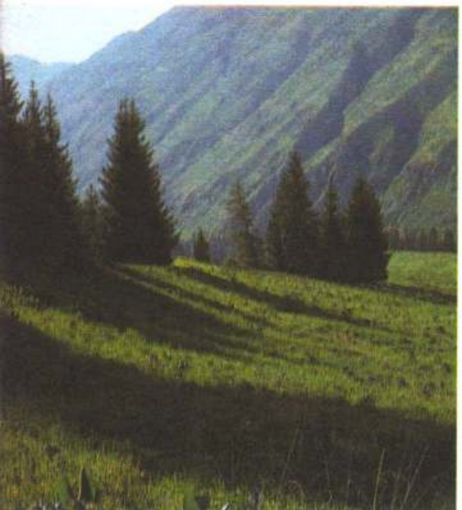
खंजन



वही परिचित-सा खंजन पक्षी है—सुडौल, चपल, चतुर। पर ज़रा ध्यान से तो देखो : सुपरिचित सफ़ेद खंजन और इसमें क्या अंतर है। इसका तो सिर ही नहीं बल्कि गर्दन भी काली है और आंखों व माथे को सफ़ेद 'मुखौटे' ने ढक रखा है। इसीलिए इसे मुखौटाधारी खंजन कहते हैं। पर बाक़ी सब साधारण सफ़ेद खंजन की तरह ही है। वही चपलता, वही चुस्ती, वही सजीवता। और उसका गीत भी वैसा ही सीधा-सरल है, लगता है वह गा नहीं बल्कि जल्दी-जल्दी कुछ बोल रहा हो। उसी तरह लहराती उड़ान, उसी तरह तेज़ दौड़ और इसे भी पत्थर या ठूंठ पर बैठ कर अपनी लम्बी दुम को हिलाना पसंद है।

वसंत में खंजन पक्षी नाचता भी है : दुम उठाकर, डैने झुकाकर, चोंच तानकर। ऐसी मुद्रा बना कर घेरे में घूमता हुआ, सिर झुकाता हुआ।

वसंत के प्रारंभ से पतझड़ के अंत तक खंजन पक्षी नदियों और झीलों के पास रहते हैं। और उन्हें देखकर बड़ा ही आनंद आता है!



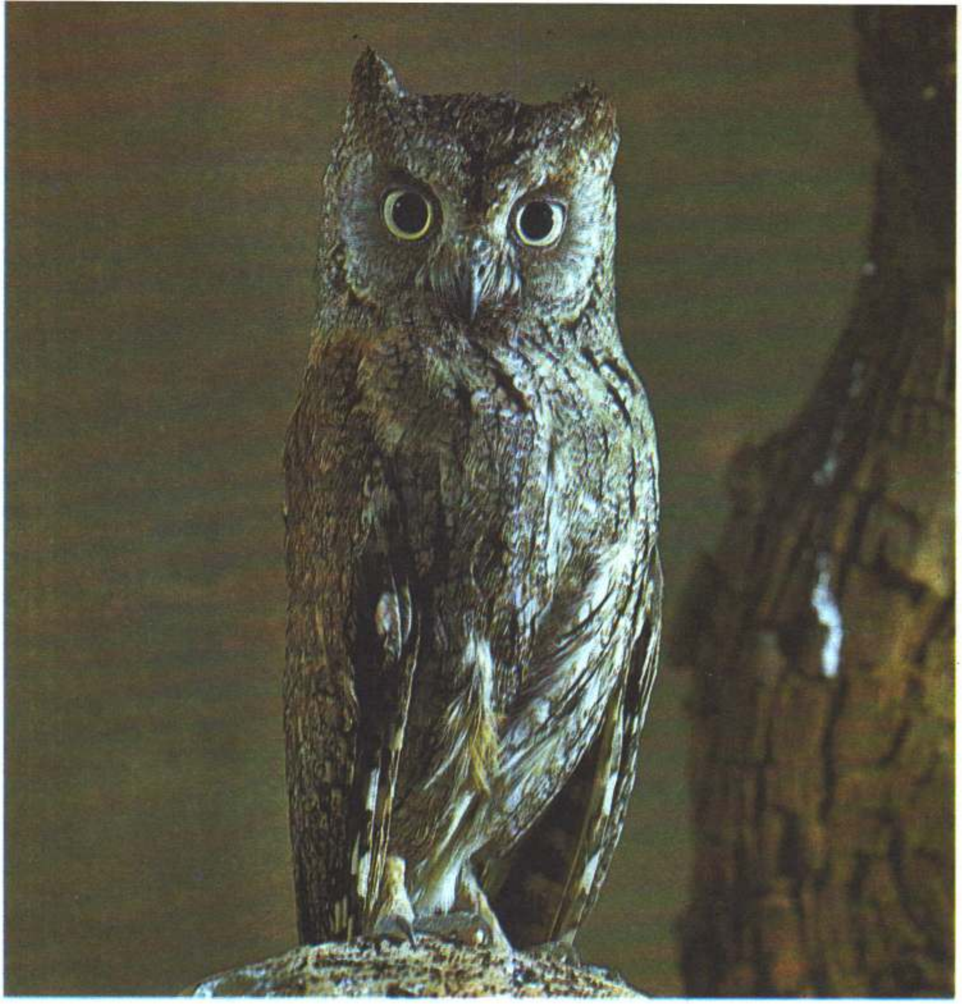


हिरणी

सूर्योदय और सूर्यास्त के समय हिरण वन से मैदान में निकलते हैं। पर यहां भी उन्हें ठीक-से देख पाना इतना सरल नहीं – वे बहुत डरपोक और चौकस होते हैं। बस रुक-रुककर सिर उठाते हैं: चारों ओर नज़र दौड़ाने, सुनने और सूंघने के लिए। आंखें तो उनकी पैनी होती हैं और कान तो इससे भी तेज़। पर नाक उनकी सबसे संवेदनशील होती है। इसलिए वे अपनी आंखों, कानों पर इतना भरोसा नहीं करते जितना कि नाक पर। चलते हुए, लेटे हुए या चरते हुए वे नाक को सदा हवा के रुख़ की ओर रखते हैं।

हिरण चौकस और... जिज्ञासु होते हैं। ख़तरे को महसूस करके वह झट से चौकड़ियां नहीं भरने लगते। पहले वह ओट में छिपकर यह पता लगाने का प्रयास करता है कि उसका पीछा किया जा रहा है या नहीं, उसे आगे दौड़ने की आवश्यकता है या वहीं खड़े-खड़े ख़तरा टलने की प्रतीक्षा करे?

और इस हिरणी को भी आदमी की गंध लगी, चौकस होकर वह दौड़ने को तत्पर है। पर फिर भी वह कुछ ठिठकी और हमने उसका फ़ोटो खींच लिया। अब जाती रहे दौड़कर जंगल में पर हमारे लिए तो वह सदा इसी तरह मैदान में खड़ी रहेगी...

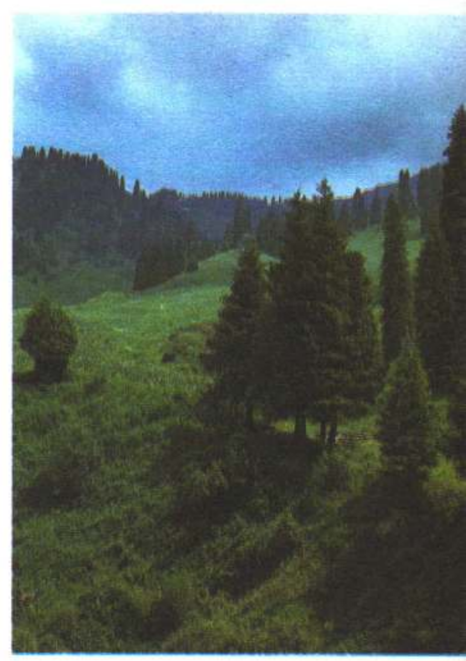


स्कोप्स

स्कोप्स एक सबसे छोटा उल्लू होता है। यह उल्लू न केवल छोटा होता है बल्कि उसका रंग भी ऐसा होता है कि पेड़ पर उसे देखना बड़ा कठिन होता है। वह तनकर, बिना हिले-डुले, ग्रांखें मूंदकर बैठ जाता है ग्रौर – सूखी टहनी या उभरी छाल में बदल जाता। बस इसी तरह दिन भर बैठा ऊंघता रहता है।

पर सांझ ढलते ही, वन पर झुटपुटे की चादर गिरते ही स्कोप्स उल्लू फ़ौरन जाग पड़ता है। ग्रांखों ग्रौर कानों से स्थिति का जायज़ा लेकर वह चुपचाप शिकार पर चल पड़ता है। वह रात में उड़ने वाले कीट-पतंगों का शिकार करता है।

ग्राखेट के बीच-बीच वह किसी टहनी पर बैठकर ग्रपना गीत गाता है। उसका गीत, बेशक, बिलकुल भी वैसा नहीं जैसा कि दिन में चहचहानेवाली चिड़ियों का होता है। वह तो नीरस, मनहूस चीख़ें ही निकालता है: "चिउ! चिउ! चिउ!" पर बड़ी ग्रजीब बात है कि उनको सुनते हुए जी नहीं भरता। वे ग्रंधेरी रात को सजीव बनाते हैं, उसे कुछ-कुछ रहस्यमय, तिलस्मी बना डालते हैं।



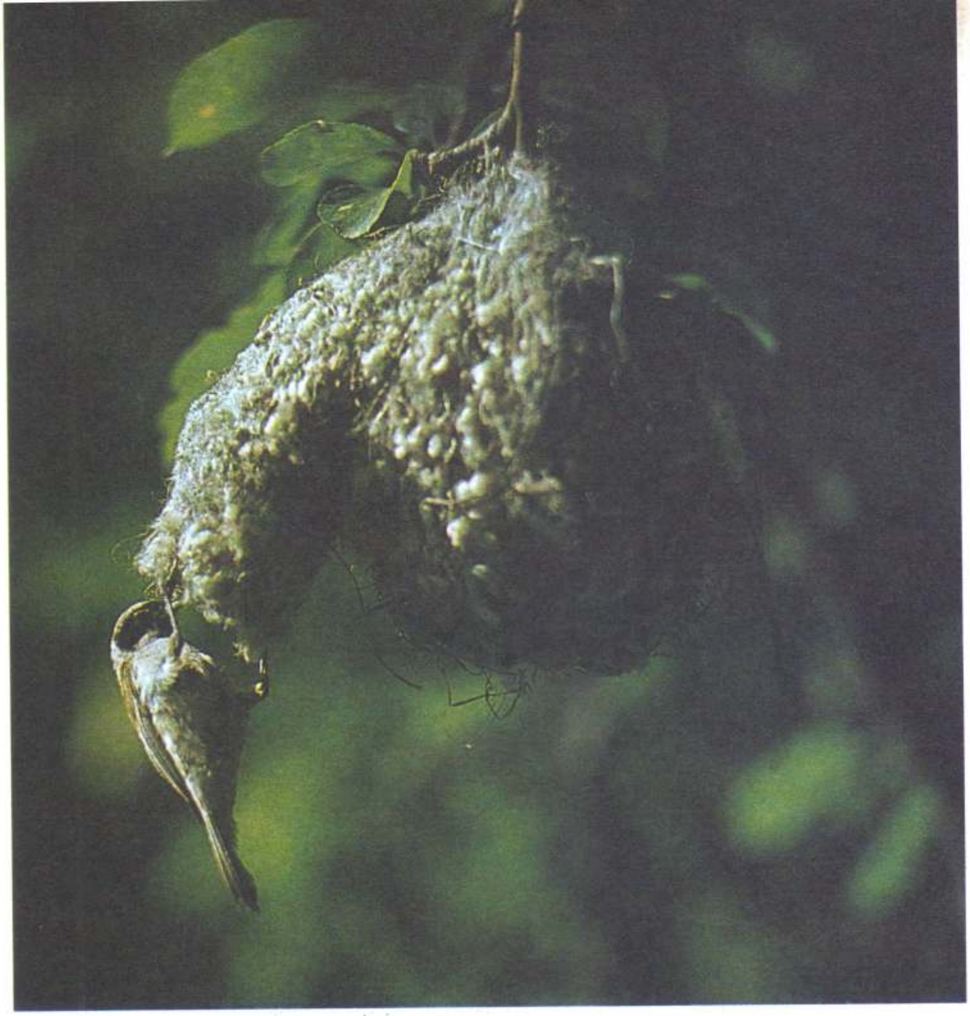


उलूक शावक

छाया में ठूंठ पर उल्लू का नन्हा-सा बच्चा बैठा है और सब्र के साथ रात की प्रतीक्षा कर रहा है। वह प्रतीक्षा कर रहा है कि कब मां आकर उसे खाना खिलायेगी।

दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे बड़ी ऊब होती है। ऊब कर वह इधर-उधर देखने लगा और उसकी नज़र मुझ पर पड़ी। मैं उसकी आंखें देखकर ही समझ गया कि अभी निरा उल्लू ही है उल्लू का बच्चा पर बड़ा इतराता है। अभी मैं तुझे अक़्ल सिखाता हूं! मैं उकड़ूं बैठ गया और सिर हिलाकर मैंने बांहें फैलायी। उलूक शावक एकटक मुझे देखने लगा, पलकें झपक-झपककर टांगें बदलने लगा, बड़ा मज़ा आ रहा था उसे। बायां हाथ मैं उसकी नाक के ऐन नीचे नचा रहा था, ध्यान बंटाने के लिए और दायां बड़ी सावधानी से उसके पीछे ले गया, और झट से उसकी गुद्दी दबोच ली!

तभी उल्लू के बच्चे को अक़्ल आयी कि उसे झांसा दिया गया। ग़ुस्से में उसने रोंगटे खड़े कर लिये, चोंच किटकिटाने लगा, नाख़ून चलाने लगा। और आंखें उसकी देखने लायक थीं, चिंगारियां छूट रही थीं उसकी आंखों से! वह मुझसे बेहद नाराज़ था। पर मेरा क्या दोष – ख़ुद ही का तो क़ुसुर है। किसने कहा था तुझे इतराने को!



गंगरा (पेंडुलाइन टिट)

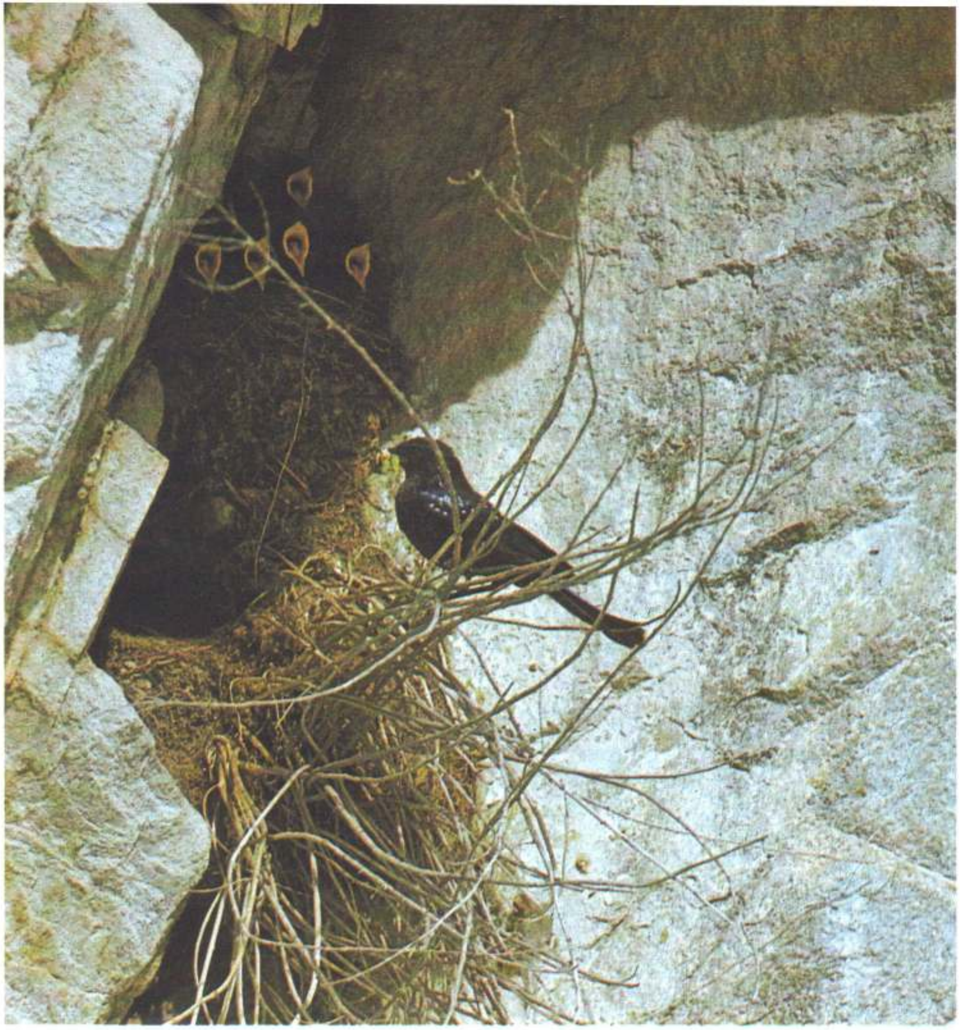


घोंसले भी कैसे-कैसे होते हैं! चिफ़-चाफ़ पक्षी झोंपड़ी जैसा घोंसला बनाता है, चिलबिलों का घोंसला प्याले जैसा होता है। पीलक पालने जैसा घोंसला बनाते हैं और पहाड़ी कठफोड़े मिट्टी की हंडिया जैसे। एक और प्रकार का घोंसला होता है – बिना अंगुलियों वाले दस्ताने जैसा! रेशे और रोयों से बुना दस्ताना। सलाइयों से नहीं बल्कि गंगरा पक्षी की चोंच से बुना!

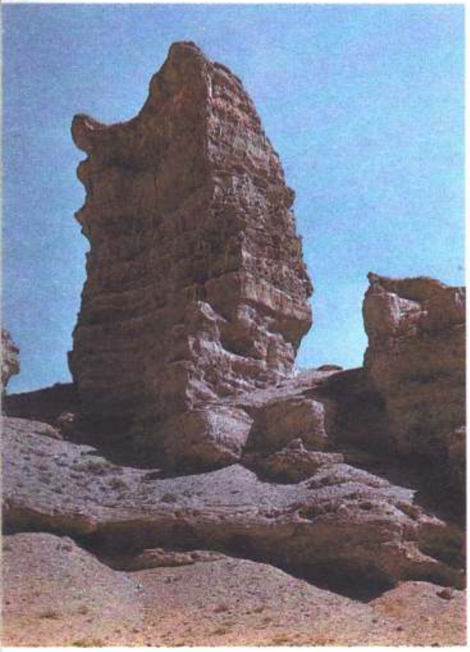
यह दस्ताना सबसे पतली डाल के ऐन सिर पर लटका होता है: हवा उसे अनवरत झुलाती-घुमाती रहे तो कोई बात नहीं पर कोई पराया वहां नहीं पहुंच सकता। दस्ताने के अंगूठे में छेद होता है, यही घोंसले का प्रवेश-द्वार है।

टहनियों पर बुना – मज़बूत, मुलायम और गर्म घोंसला लटका रहता है। उसके गोल प्रवेश-द्वार की 'चौखट' सफ़ेद होती है ताकि छाया या सांझ के झुटपुटे में भी उसे साफ़-साफ़ देखा जा सके।

गंगरा पक्षी घर-गृहस्थी का बड़ा ख़याल रखते हैं। अपने बच्चों को ठंड से बचाने और उनका पेट भरने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते, चोंच भर-भर कर चुग्गा घर लाते हैं और सीधे सफ़ेद किनारीवाले काले छेद में डुबकी लगाते हैं, ठीक वैसे, जैसे चांदमारी के चांद में गोली लगती है! एक बार भी निशाना नहीं चूका!



नील पक्षी



दूर से वह काला लगता है। और पास से ही धूप में वह नीली आभा छोड़ता है। तब तो उसे देखते ही रहने की इच्छा रहती है! पहाड़ी नाले की धारा में फेन और फुहार से घिरे किसी पत्थर पर वह बैठ जाता है और जल कणों की धुंध में मानों इंद्रधनुष चमक उठता है, मोतियों की तरह झिलमिलाता। उसने सिर झुकाकर पंखे की तरह दुम फैलायी – और उसकी पूंछ नीली लपट की तरह आभावान हो गयी!

पहाड़ी नदी की निरंकुश धारा, गरजती-दहाड़ती बह रही है, पर नील पक्षी ने चोंच खोली और उसकी तीखी सीटी नदी की गरज को चीरती हुई साफ़-साफ़ सुनाई पड़ी।

नील पक्षी को पानी बेहद पसंद है। वह पानी के पास बैठकर गाता है, पानी में ही शिकार करता है। निडर होकर वह पानी में घुसता है नन्ही मछलियों और डिम्भकों को पकड़कर खाता है। अपना घोंसला भी पानी के पास तट पर बनाता है। कभी-कभी तो वह झरनों के नीचे तक घोंसला बना डालता है! और तब जल प्रपात की चादर जहां से फटी होती है वहां से अपने नन्हे बच्चों के पास जाता है। और उसके बेसब्री से प्रतीक्षारत बच्चे अपने पीले-पीले मुंह ऐसे खोलते हैं मानो 'हुर्रा' चिल्ला रहे हों!



कस्तूरा

कस्तूरा पक्षी का रंग काला ग्रौर चोंच पीली होती है। यह बाम्कार, चिलबिल ग्रादि की जाति का पक्षी है पर गाने में उसकी कोई सानी नहीं है।

सूरज धीरे-धीरे पहाड़ों के पीछे डूब रहा है। सूर्यास्त से पहले की नीरवता छायी हुई है। हवा शीतल ग्रौर इतनी पारदर्शी है कि सबसे दूर वाली चोटी पर पड़ा छोटे से छोटा पत्थर तक साफ़ दिखाई पड़ रहा है। ग्रौर इस नीरवता ग्रौर निर्मलता में कस्तूरा पक्षी गाता है।

उसकी मंद-मंद स्वर-लहरी में कुछ-कुछ उदासी-सी है। सीटी की तरह चहचहाकर वह रुकता है – ग्रनुगूंज तो ठीक हुई है न? फिर सीटी बजाकर चुप हो जाता है सुनने के लिए – पड़ोसी ने तो तान नहीं छेड़ी? ग्रौर लगता है कि स्वयं पर्वत कस्तूरा पक्षियों के साथ मिलकर चहचहा रहे हैं। ग्रौर यह क्रम ग्रंधेरा घिर जाने के कुछ बाद तक चलता रहता है।



आसमानी झील

स्तेपी के सुदूर आंचल पर बिंदु की तरह तंबूघर दिखाई पड़ रहा है। तंबूघर के आगे कगार है और कगार के आगे – जलराशि! नीले पानी की सतह क्षितिज पर आकाश को चूम रही थी।

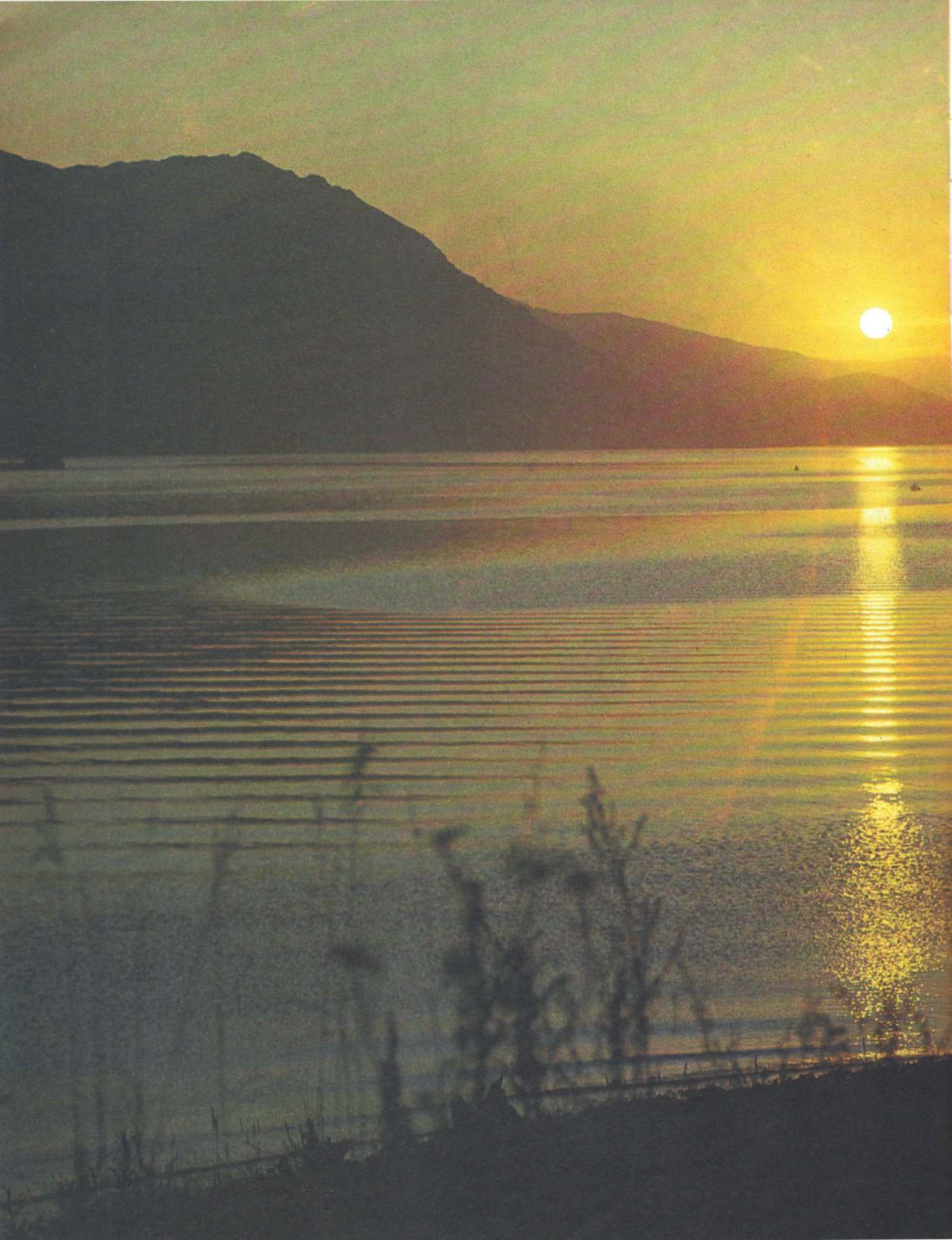
ज़रा कल्पना करो सफ़ेद आकाश तक ऊंची नीले जल की दीवार की!

दूरी पर नीली आभा की छटा थी, तटों पर आसमानी लहरें सफ़ेद फेन मथ रही थीं। सफ़ेद फेन के ऊपर सफ़ेद गालों की तरह चिल्लियां उड़ रही हैं। ललौंही भूजिह्वाओं पर लाल सुरख़ाबें ऊंघ रही हैं, तट और पानी के बीच काले पत्थरों के पास सफ़ेद फेन में काली-सफ़ेद शाह-चकवा बत्तखें नहा रही हैं। धूप में उनकी मूंगे जैसी गीली चोंचें चमक रही हैं।

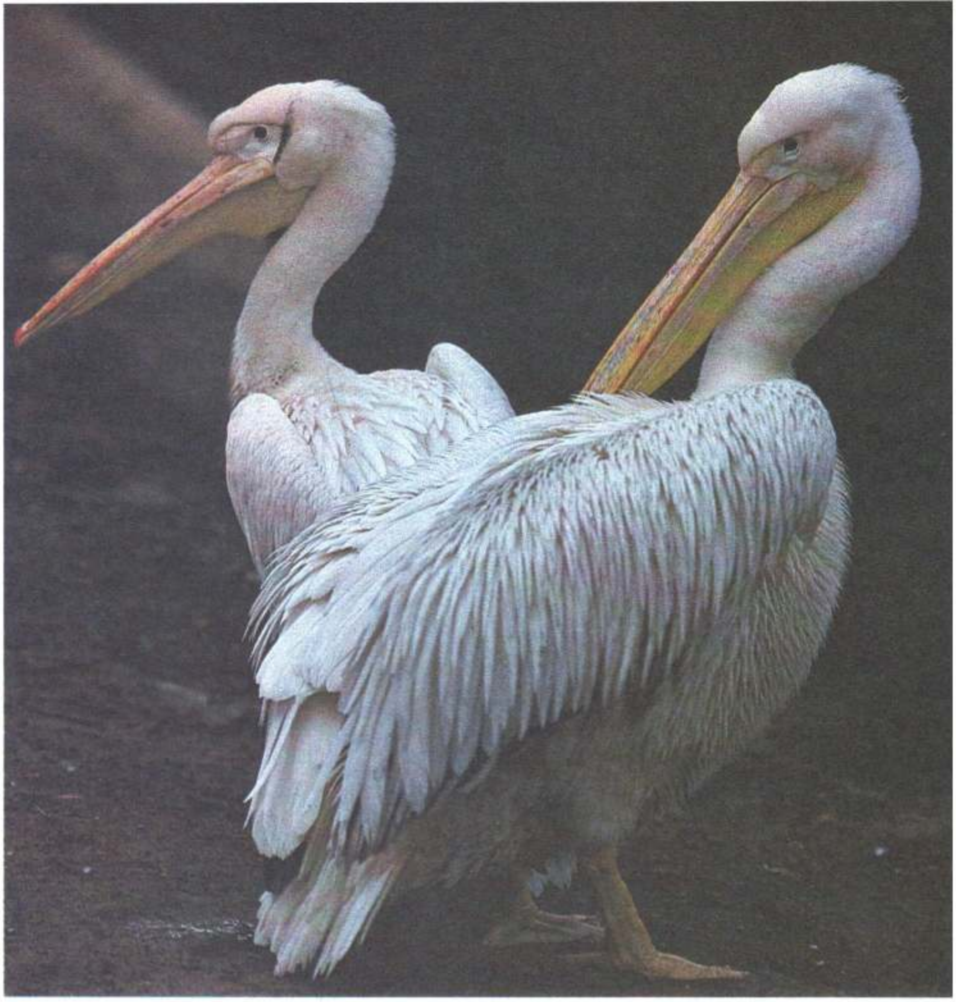
अथाह जलराशि के तट पर लगता है मानो काल की गति धीमी हो गयी। मंद-मंद हिलोरें लेती झील की लहरियों पर धूप झिलमिला रही है। और मानो डैनों से सूर्य को छूते हुए उकाब ऊंचाई पर सुस्ती से मंडरा रहा है।

घंटों तक टहलते हुए जलराशि को, आकाश को, तटों को भावशून्य होकर देखा जा सकता है। पर बाद में अवश्य यह अनुभूति होती है कि तुम बेकार ही नहीं टहलते रहे और देख भी भावशून्य होकर नहीं रहे थे। और यह भी कि कभी भी मन इतना स्वच्छंद नहीं रहा था और मस्तिष्क ने कभी इतना तीव्र काम नहीं किया।

विपुल नील जलराशि। सांय-सांय चलती हवा, लहरों की फुसफुसाहट और छींटों की फुहार, तट पर लहरों की रगड़ से चिकने, चमकते ठूंठ, गीली सरंध्र बालू और निस्तेज आकाश को चूमती नीली पानी की दीवार – क्या यह परीलोक का दृश्य नहीं?







पेलीकन

तट पर पेलीकन बड़े बेढब और फूहड़-से लगते हैं। टेढ़ी टांगें, लम्बी नाक, विचित्र-सी भाव-भंगिमा।

पर पानी में तैरते पेलीकन ऐसे लगते हैं, मानो किसी परीकथा से आये पोत!

श्वेत फेन की कलगियों वाली नीली लहरें हिलोरे ले रही हैं और अपनी सफ़ेद छाती से उन्हें चीरते हुए पेलीकन मंथर गति से तैर रहे हैं, डैनों को ऊपर उठाकर—कहीं भीग न जायें। अपनी विशाल चोंच को पानी में डुबो-डुबोकर वे मछली का शिकार कर रहे हैं।

एक ने बड़ी मछली पकड़ी—उसे उछाला, चोंच खोली और लपककर निगल गया। और फिर से सफ़ेद जहाज़ की तरह तैरने लगा, छाती पर चोंच टिकाकर।

पेलीकन पंजों से छपछप करते हुए बड़ी मुश्किल से पानी की सतह से उड़ान शुरू करते हैं। पर एक बार उससे निकल गये तो आसानी से ऊपर





उठती गर्म वायु के सहारे ऊंचाई पर पहुंच जाते हैं और कुछ दम लेने, ऊंघने, पंखों को सुखाने के लिए तट की ओर चल पड़ते हैं।

डैने फैले हैं, मछली पकड़ने के जाल का काम करनेवाली चोंच गलथैली पर टिकी है, सामने से आती हवा से कभी वह गुब्बारे की तरह फूल जाती है तो कभी पिचक जाती है। पेलीकन उड़ते-उड़ते उसे सुखाता है, हवा देकर मछली के नये शिकार के लिए उसे तैयार करता है।

पेलीकन – भले स्वभाव के पक्षी होते हैं। हमेशा वे बड़े-बड़े समुदाय बनाकर रहते हैं। घोंसले वे सरकंडों के 'बेड़ों' पर बनाते हैं।

उनकी बस्ती का कोलाहल दूर से ही सुनाई देता है। लगता है कि ढोरों का कोई झुंड सरकंडों के झुरमुट में भटक रहा है – यह नन्हे पेलीकन भूख के मारे इतना शोर मचा रहे हैं। मां-बाप उन्हें मछली का क़ीमा खिलाते हैं। पेलीकनों की बस्ती में पहुंचना बेहद कठिन है, घने सरकंडे, दलदल और मच्छरों की सेना उसकी रक्षा जो करती हैं।



अबाबीलपुछी तितली

ख़ुद ही देख रहे हो कि कितनी सुंदर तितली है! फूलों पर भी, ज़मीन पर भी बैठी और उड़ते हुए भी वह सुंदर लगती है। खेद की बात है कि तितलियों के सुखाये गये संग्रह में भी सुंदर लगती है। अगर संग्रह की ही बात होती, तब भी ठीक था – उनका कुछ लाभ तो है। पर लोग तो तितलियों के पंखों से तरह-तरह की चीज़ें बनाना सीख गये हैं। मोज़ैक की तरह उनके पंखों से चित्र तक बना डालते हैं। एक ही तसवीर में सैकड़ों, हज़ारों पंख लग जाते हैं, और वह भी सबसे सुंदर, सबसे चमकीले! इनके बीच अबा-बीलपुछी तितली के पंख भी ज़रूर होते हैं।

ऐसे 'चित्र' बड़ी जल्दी बदरंग होकर धूल से ढक जाते हैं। पर ताज़े, चमकीले भी फूलों पर विचरती तितलियों की सुंदरता से भला कहां मुकाबला कर सकते हैं, एक फूल पर बैठी एक ही तितली तक से नहीं।



बटान

बटान पक्षी टिटिहरी जाति का होता है और टिटिहरी को तो नमी से बड़ा लगाव होता है। टिटिहरियां दलदलों, नम मैदानों में, नदियों और झीलों के तटों पर रहती हैं। पर न जाने क्यों कैस्पियन बटान को सूखी स्तेपी प्रिय है। और सूखी स्तेपी में सबसे सूखे स्थान वे होते हैं जहां की मृदा को लू ने चाट-चाट कर झुलसा दिया हो। और यह पक्षी ऐसे ही स्थानों पर रहता है, यहीं अपने बच्चे पालता है।

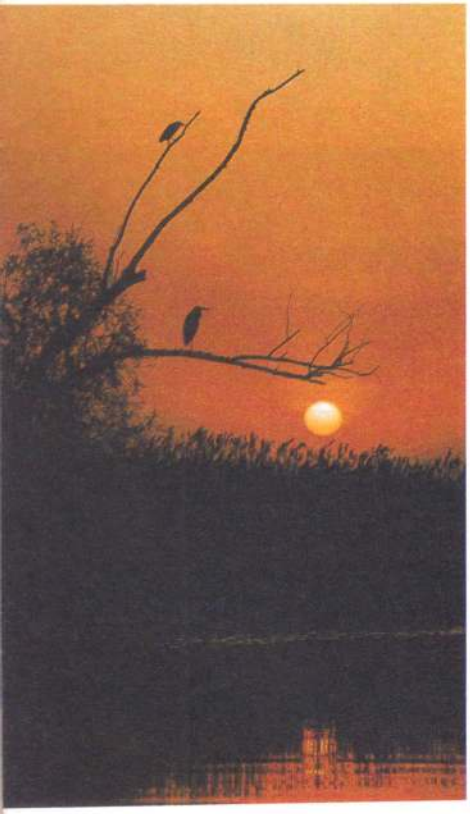
घोंसला उसका ज़मीन पर होता है, घोंसले में अंडे आधे धूल से ढके होते हैं: ठीक से समझ में नहीं आता कि बटान उन्हें सेता है या गर्म धूल? क्या पता धूल ही उनके अंडे सेती हो?

उसके अंडों को देख पाना लगभग असंभव है। पर बटान के बच्चों को देख पाना तो और भी कठिन है। वे भागकर ऐसे छिप जाते हैं मानो ज़मीन ने उन्हें निगल लिया हो। जगह बिलकुल खुली, सपाट-समतल है, झाड़ी तो क्या घास की एक पत्ती तक नहीं आसपास, पर वे नहीं दिखाई देते हालांकि जानते हो कि वे यहीं हैं क्योंकि छिपने की कोई जगह नहीं। लाख कोशिश करने पर भी नहीं दिखाई पड़ते।





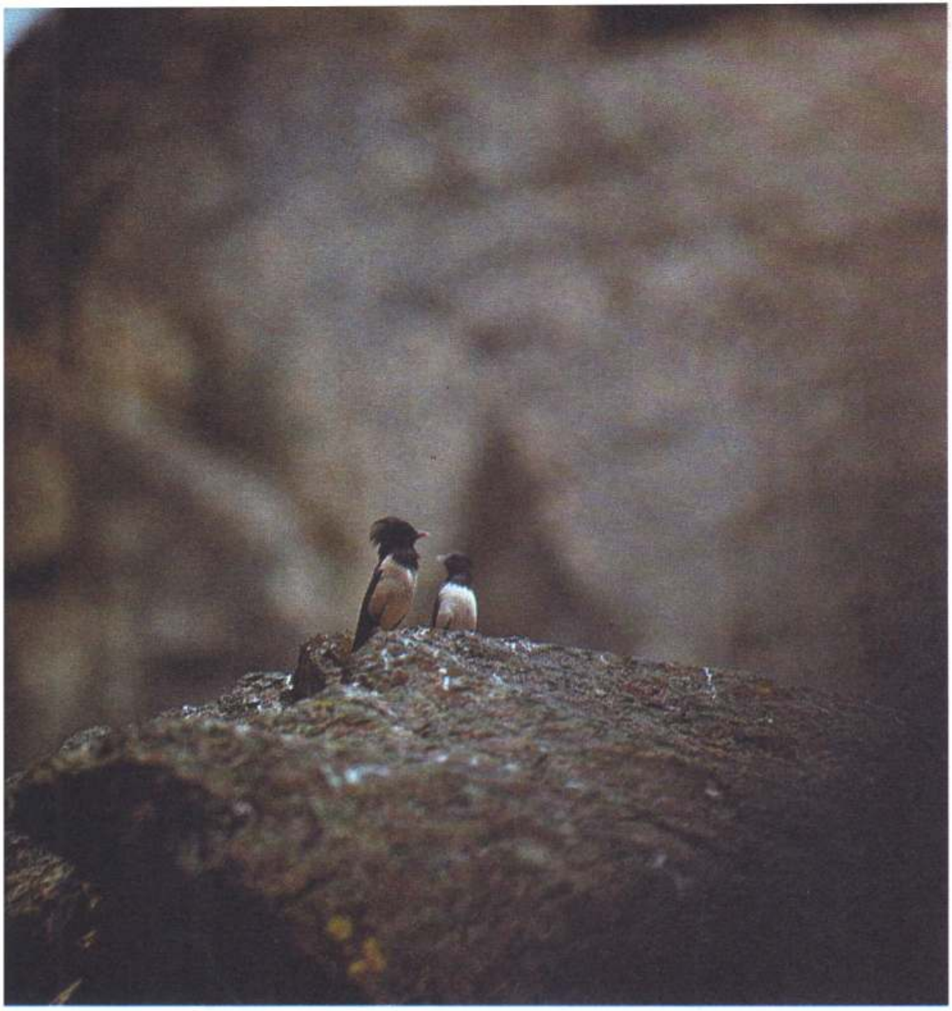
कुमुदिनी



कुमुदिनियों का गुलदस्ता बनाया जा सकता है पर एक घंटे बाद वे मुरझा जायेंगी। कुमुदिनियों की माला बनायी जा सकती है पर वह और भी जल्दी मुरझा जायेगी। पर उन्हें तोड़े बिना पूरी गर्मियों में उनकी सुंदरता का रसास्वादन किया जा सकता है!

मोम की सी पंखुड़ियोंवाली सुनहरी कुमुदिनी दिन भर धूप सेंकती हुई पानी की सतह पर तैरती रहती है पर शाम को पंखुड़ियां ऐसे सिमट जाती हैं जैसे सफ़ेद उंगलियां मुट्ठी भींच लेती हैं। और कुमुदिनी को भींचे यह मुट्ठी धीरे-धीरे पानी में गोता लगा लेती है और सवेरे तक पानी के अंदर सोती रहती है। और सवेरे यह गोताख़ोर फूल पानी से सिर निकालकर खिल पड़ता है और फिर से धूप सेंकता हुआ अपने बीज पकाने लगता है।

बीजों के पकने तक हम कुमुदिनी के फूलों का आनंद ले सकते हैं। यही नहीं, उन्हें देखकर घड़ी भी मिलायी जा सकती है। आख़िर कुमुदिनियां सवेरे सदा एक ही समय पर खुलती हैं। वे मौसम की भी भविष्यवाणी करती हैं— वर्षा से पहले वे नहीं खुलतीं!

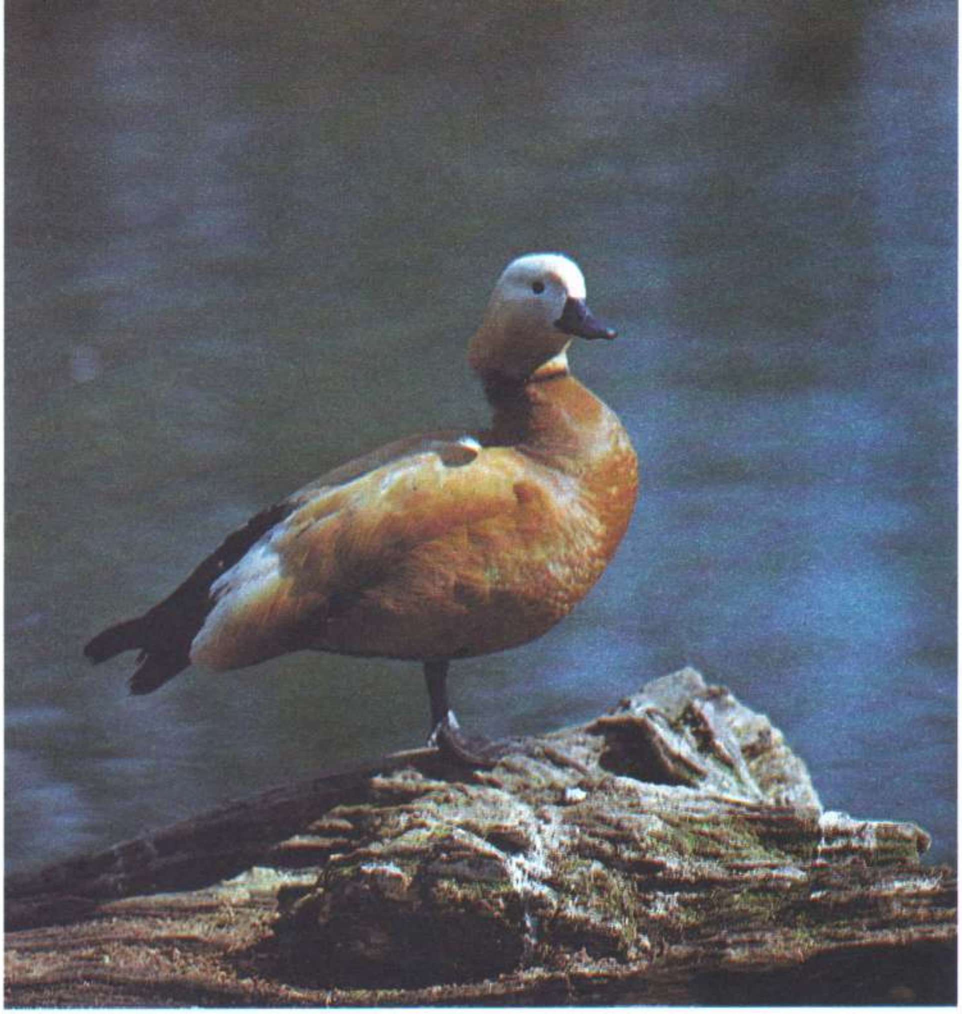


गुलाबी तेलियर

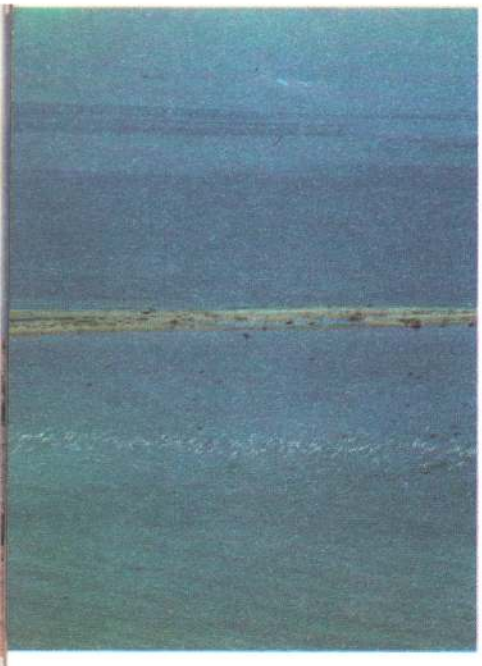
जी हां, तेलियर गुलाबी भी होते हैं। इसे देखिये! यह रहा, काली कलगी और पंखोंवाला गुलाबी तेलियर!

काले तेलियरों की तरह गुलाबी तेलियर भी सामाजिक पक्षी हैं। कभी भी वे एकाकी नहीं रहते। वे सदा चट्टानों की दरारों और पत्थरों के ढेरों में घोंसले बनाकर बड़े-बड़े समुदायों में रहते हैं। दर्जनों, सैकड़ों साथ रहते हैं – पूरा चिड़िया बाज़ार लगती है उनकी बस्ती! घंटों खड़े होकर उनकी चहचहाहट और चिल्लपों सुनते रहो, उनको उड़ते, बैठते, झगड़ते देखते रहो तब भी जी नहीं भरता!

और इस ओर अवश्य ध्यान जायेगा कि हरेक तेलियर की चोंच में टिड्डी दबी होगी। कभी-कभी तो उनका पूरा गुच्छा। टिड्डियों को पकड़ने के लिए तो दूर की स्तेपी तक जाने को तैयार रहते हैं, आख़िर यह उनका प्रिय भोजन जो है। बड़े पैमाने पर टिड्डी-दलों को नष्ट करने के लिए उन्हें अंगूर के बागानों और बागों पर हमले भी माफ़ कर दिये जाते हैं। ठीक ही तो है। इतने सुंदर और नेक पक्षी भला दो-चार चेरियां और अंगूर का एकाध गुच्छा पाने के क़ाबिल नहीं है? और तो और वे टिड्डियों को नष्ट करके उनका मूल्य चुका देते हैं।



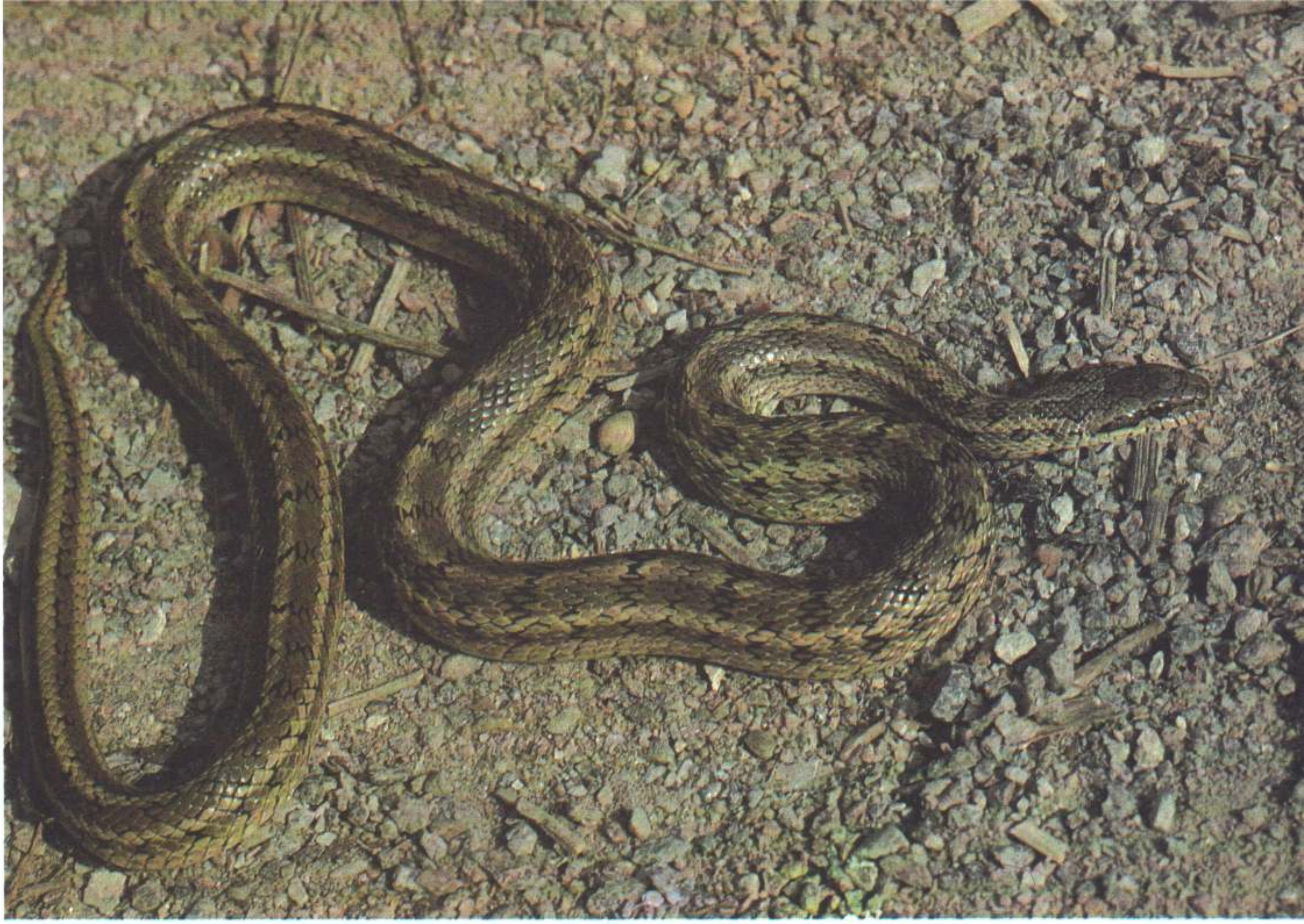
सुरख़ाब



सुरख़ाब शायद सबसे अनोखी बत्तखें हैं। उनके रंग को ही लो – चटक लाल, अलग ही दिखाई देता है। और उसकी आवाज़ हंस से अधिक मिलती-जुलती है न कि बत्तख़ से। और घोंसले भी वे न तोदों पर बनाती हैं, न ही झाड़ियों के नीचे बल्कि गुफाओं और मांदों में! और न ही दलदलों में रहती हैं जहां कि बत्तख़ों को रहना चाहिए, बल्कि सूनी स्तेपी में, और नहीं तो ऊंचे पहाड़ों में रहती हैं! पहाड़ों में वे अपने घोंसले गुफाओं और चट्टानों की दरारों में बनाती हैं, अगर स्तेपी में हों तो मार्मोटों और लोमड़ियों की पुरानी मांदों में। कभी-कभी तो किसी पुरानी टूटी कब्र में घोंसला बना डालती हैं...

बेचारे चूज़ों की आफ़त आ जाती है। पंजों को पैराशूट की तरह फैलाकर चट्टान से कूदो या संकरी, अंधेरी मांद से गिरते-पड़ते निकलो। और तो और बुड्ढी बत्तख़ के पीछे-पीछे पत्थरों और कांटों पर नंगे पैर चलते हुए पहाड़ों और घाटियों को पैदल पार करो।

बुज़ुर्ग नौजवानों को पानी की ओर ले जाते हैं: हालांकि वे बड़ी विचित्र हैं पर हैं तो आख़िर बत्तखें ही! चोंचें उनकी पानी में खरपतवार जमा करने के लिए और झिल्लीदार पंजे तैरने के लिए हैं जो कि जल में विचरनेवाले पक्षियों के लिए होना ज़रूरी है। और पानी के बिना तो वे नहीं जी सकतीं।



उन्दुर सर्प

उन्दुर सर्प विषैला नहीं होता पर सांप तो सांप ही है – उसके दर्शन एक बार हो जायें तो बहुत दिनों तक याद रहते हैं। उन्दुर सर्प झाड़ियों में, पत्थरों के बीच और चट्टानों तक पर तुम्हें मिल सकता है, वहां वह धूप सेंकने और शिकार करने पहुंच जाता है। उन्दुर सर्प चिड़ियों और छोटे जानवरों, छिपकलियों और टिड्डों आदि का शिकार करता है। वह चुपके से शिकार के पास पहुंचकर उसे दांतों से दबोच लेता है। और अगर शिकार ताकतवर हो और प्रतिरोध करे तो उन्दुर सर्प उसके शरीर से लिपटकर अजगर की तरह उसका दम घोंट देता है।

पक्षियों के प्रेमी तो बहुत होते हैं पर सांपों के प्रेमी कम ही मिलेंगे, पर ज़रा ध्यान से तो देखो – उन्दुर सर्प कितना सुंदर है! सुडौल है, स्वभाव का नेक है, रंग उसके कितने सुंदर हैं। पक्षियों की तरह ही वह अकसर घरों के पास रहता है अपने मतलब से: तहख़ानों में चूहे पकड़ता है और अटारियों में गौरेया। वह यह इतना चुपचाप और छिपकर करता है कि घर के लोगों को इसकी भनक तक नहीं पड़ती। अच्छा ही है कि उन्हें पता नहीं चलता: इससे लोग भी और उन्दुर सर्प भी चैन से रह सकेंगे...



नीले पर्वत

दूर से सभी पर्वत नीले लगते हैं। उन्हें नीचे से ऊपर की ग्रोर देखो तो जितना ऊंचे देखोगे वे उतने ही धुंधले ग्रौर नीले लगेंगे। उनके नीले शिखर ग्राकाश में तैरते-से लगते हैं।

चलते-चलते थक गये पर नीले पर्वत पास नहीं ग्राते बल्कि ऊंचे होते जाते हैं। तुम थक कर निढाल हो गये पर वे उसी तरह दूरी पर खड़े हैं।

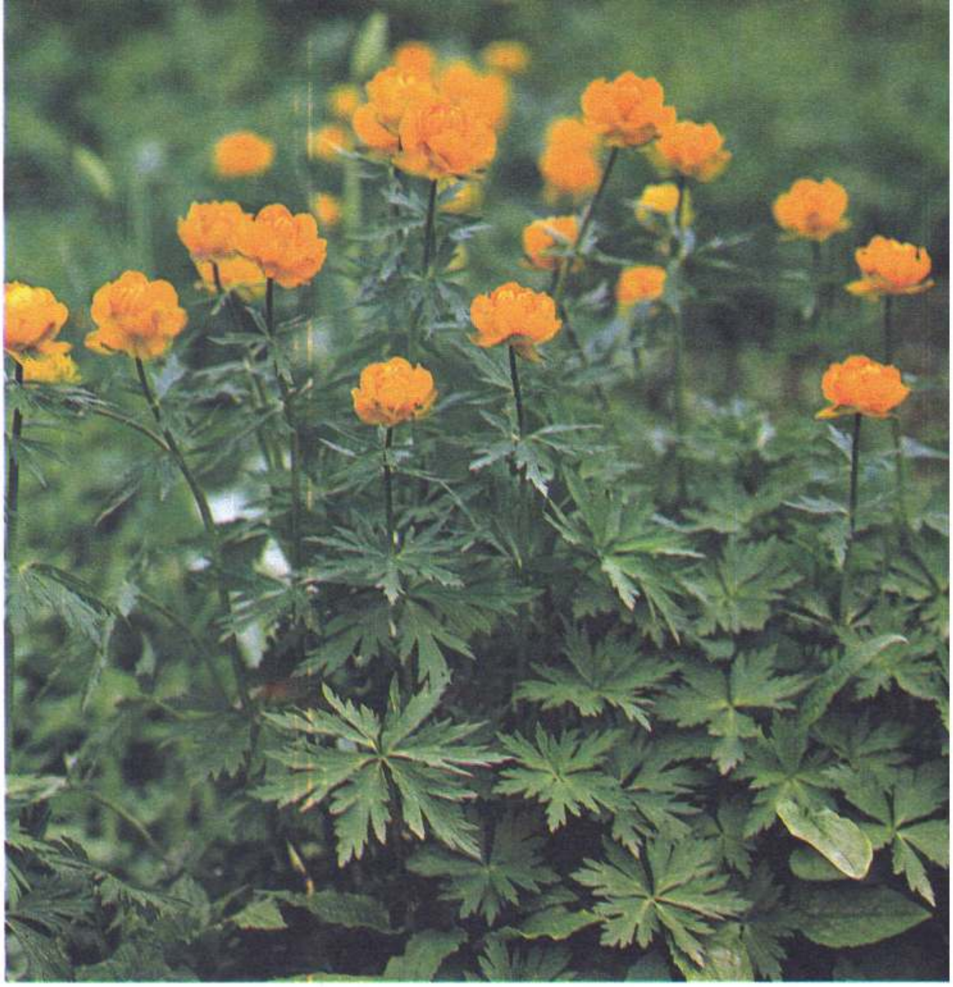
ग्रंततः तलहटी ग्रा गयी; पर्वत सारे ग्राकाश को घेर कर छत की तरह सिर के ऊपर लटके हैं। ग्रौर ग्रब तुम देख सकते हो कि वे नीले नहीं बल्कि विविध हैं—हरे, भूरे, ललौंहे। तुम्हें एक जैसे दो पर्वत कभी नहीं मिलेंगे: चाहे रंग की दृष्टि से, चाहे ग्राकृति या ऊंचाई की दृष्टि से।

हर पर्वत एक ग्रलग संसार ही है। सारी धरती की तरह व्यापक। तलहटी से शिखर तक वैसी ही विविधता है जैसे भूमध्यरेखा से ध्रुव तक। रेगिस्तान ग्रौर स्तेपियां, मैदान ग्रौर टुंड्रा तुल्य प्रदेश, पत्तियोंवाले पेड़ों के वन ग्रौर शंकुधारी वृक्षों के वन, शाश्वत हिम का प्रदेश सभी कुछ तो देखने को मिल जायेगा पर्वतों में।

लगता है कि पृथ्वी उठकर सीधी खड़ी हो गयी है! पर्वतों में बादल ग्रौर पक्षी उस स्थान से कहीं नीचे उड़ रहे होते हैं जहां तुम खड़े हो ग्रौर जल प्रपात ग्रौर नदियां तुम्हारे सिर के ऊपर कहीं ऊंचाई पर गरजती बहती हैं। यहां इंद्रधनुष के नीचे से ऐसे ही निकला जा सकता है जैसे तुम तोरण के नीचे से गुज़रते हो। यहां सचमुच बादलों के बीच चला जा सकता है। चाहो तो तारों तक को छू सकते हो। ग्रौर एक साथ तुम यहां गर्मी से लेकर सर्दी तक सभी ऋतुग्रों को देख सकते हो।

पर्वत के शिखर से धरती का सारा सौंदर्य मानो तुम्हारी हथेली पर धरा होता है। ग्रौर क्षितिज पर नये पर्वत दिखाई पड़ते हैं। एक श्रेणी के पीछे दूसरी, एक से एक ऊंची, एक से एक धुंधली, एक से एक नीली। नीले पर्वतों का कोई ग्रंत ही नहीं दिखाई पड़ता।





झार्की



झार्की – साइबेरियाई ग्लोब पुष्पों का रूसी नाम है। रूसी में झार्की का अर्थ होता है – गर्म, तपा। और गहरे नारंगी रंग के ये चटकीले फूल अपने नाम को चरितार्थ करते हैं। वे घनी घास में छोटी-छोटी बत्तियों की तरह चमकते हैं।

जब किसी चीज़ की बहुतायत होती है तो उसका मूल्य और आकर्षण घट जाते हैं। पर फूलों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता! पोस्त के फूलों का लाल सैलाब, बटरकपों की पीली चादरें, फ़ार्गेट-मी-नाट से नीली घाटियां मन को आह्लादित करते हैं। और स्नोड्राप्स के फूलों से सफ़ेद वनांचल, डेज़ी के फूलों से श्वेत-शुभ्र मैदान क्या मन को आह्लादित नहीं करते? या मैदानों में इन झार्की फूलों को ही लो, उन्हें देखकर पथिक अनायास ही ठिठककर रुक जाता है। वहां से जाने को जी ही नहीं करता।

जाड़ों में भी इन फूलों की याद आती है और गर्मियों में उन्हें फिर से देखने की आतुरता से प्रतीक्षा की जाती है। मन उन्हें फिर से देखने, फिर से सुनहरे मैदानों को देखने, वहां स्वच्छंद होकर घूमने को व्याकुल रहता है।



पहाड़ी बकरियां

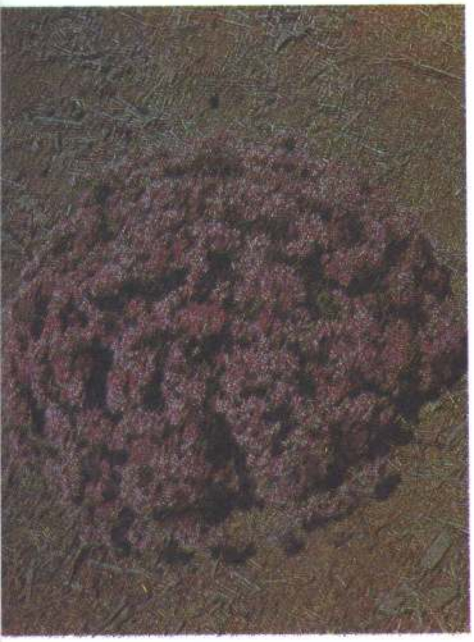


पहाड़ों में जहां रोड़ी झड़ती है, नीरवता कम ही होती है। वहां अनवरत झड़ते पत्थरों की खड़खड़, ठकठक सुनाई देती रहती है। पहाड़ी लोग कहते हैं कि यह पत्थर कानफूसी कर रहे हैं। वर्षा का पानी उन्हें धोता है, हवा उनको सुखाती है, कभी धूप में तप जाते हैं तो कभी छाया में ठंडे होते हैं– बस यही उनके फुसफुसाने, कानाफूसी का कारण है।

पर जब वहां से पहाड़ी बकरियां गुज़रती हैं तो पत्थर फुसफुसाते नहीं बल्कि बड़े ज़ोर से खड़खड़ करते हुए शोर मचाते हैं!

बकरियों के खुरों के नीचे से सरक कर स्लेट की चट्टान के टुकड़े झनझनाकर टूटते हुए ढलान से नीचे लुढ़कने लगते हैं। भोर के समय गिरते-लुढ़कते पत्थरों की यह झंकार किसी संगीत से भी अधिक कर्णप्रिय होती है। और बात तो बड़ी मामूली-सी है–बकरियां रोड़ी पर चल रही हैं और उनके पीछे-पीछे मेमने कुलांचे भर रहे हैं।

पर ये बकरियां साधारण नहीं बल्कि जंगली हैं। और वे पत्थरों की झंकार करते हुए पहाड़ों में स्वच्छंद विचरती हैं।





गिलहरी

जंगली सूअर ने गिलहरी को लूट लिया; लानत है उसपर अपने से छोटे को सताता है! उसने गिलहरी के ज़मीन में छिपे खाद्य-भंडार को सूंघ-सूंघ कर ढूंढ़ निकाला और आगे को निकले पैने दांतों से मिट्टी हटाकर उसका बिल खोद डाला और चपर-चपर मुंह चलाने लगा। चिलगोज़े, चुनिंदा बंजुफल, सूरजमुखी की गिरियां, गेहूं के दाने – सब चट कर गया। कम से कम एक दाना तो छोड़ जाता बेचारी गिलहरी के लिये।

बेचारी गिलहरी पतझड़ भर एक-एक करके दाने जमा करती रही। ढूंढ़-ढूंढ़कर लाती, घर पर लाकर उन्हें छांटती, सबसे उत्तम, सबसे पके दाने रखती। यह ख़याल रखती कि कहीं नमी न लग जाये उन्हें, नहीं तो फफूंद लग सकती है, अंकुर फूट सकते हैं। जाड़े भर गिलहरी सोती रही, एक भी दाना नहीं छुआ, सब बसंत के लिए बचाकर रखा था: बसंत के प्रारंभ वन में खाने की बड़ी कमी होती है। और अब बेचारी लुट गयी।

जंगली सूअर फूत्कार कर, डकार लेकर चलता बना और बेचारी गिलहरी पेड़ की डाल पर भूखी बैठी, दुःख की मारी सीटी बजा रही है।



चीतल

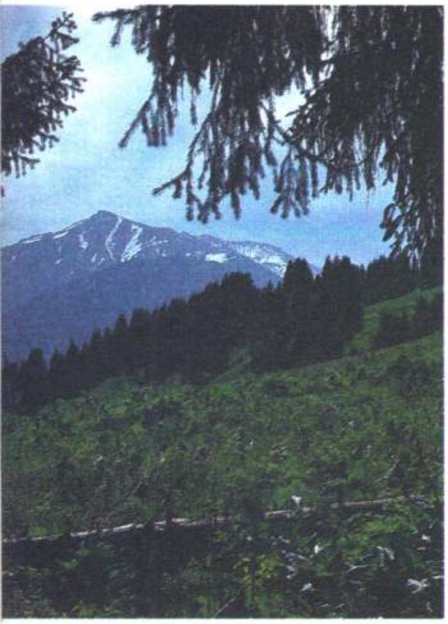
ये इतने सुंदर होते हैं कि इन्हें कभी-कभी पुष्प-हिरण भी कहा जाता है। शुरू में इनकी सुंदरता ने इनके अस्तित्व को ही ख़तरे में डाल दिया; हरेक शिकारी चीतल का शिकार करना चाहता था। पर अब उनकी सुंदरता उन्हें सुरक्षित रखती है: सब उन हिरणों को देखना चाहते हैं जिन्हें पुष्प-हिरण कहा जाता है। और चीतलों को सोवियत संघ के सारे क्षेत्र पर बसाया गया।

चीतल से साक्षात्कार बड़ा लोमहर्षक होता है। अचानक टहनियों और पत्तियों के बीच चीतल की सुडौल आकृति प्रकट होती है और झट से धूप-छांव की झिलमिल में विलीन हो जाती है। और अगर तुम्हें हिरनौटे को देखने का सौभाग्य मिला तो कभी नहीं भूलोगे। हल्की-सी पदचाप, सरसराहट सुनाई दी और वृक्षों से घिरे मैदान में हिरनौटा टांगें चौड़ी किये खड़ा नज़र आया। काली आंखें कुछ-कुछ उभरी हुई हैं, चौड़ी थूथनी गीली है और कान बड़े-बड़े, रोयों से ढके। और ललछौंही खाल सुनहरी चित्तियों से ढकी है। वास्तव में लगता है कि हरी घास के बीच जानवर नहीं, कोई आश्चर्यजनक फूल खिला है – हिरनौटे के रूप में।





चेचेवित्सा



चेचेवित्सा कुलिंग जाति का पक्षी है। रूसी में चेचेवित्सा का अर्थ मसूर की दाल होता है। जब यह पक्षी बोलता है तो लगता है मानो वह कह रहा हो 'चेचे-वित्सा' इसी कारण उसका यह नाम पड़ा है। नर चेचेवित्सा क सिर लाल रंग का होता है। चेचेवित्सा की चहक साल में केवल दो महीने ही सुनाई देती है। यह पक्षी सबसे बाद में नील पर्वतों में ग्राता है ग्रौर सबसे पहले यहां से चला जाता है। यहां ग्रंडे देता है ग्रौर जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो फिर यात्रा पर निकल पड़ता है। बस उसकी याद ही रह जाती है...



जंगली मुर्गी

जंगली मुर्गी बड़ी डरपोक ग्रौर सतर्क होती है। उसे देख पाना कोई ग्रासान काम नहीं है, ग्रौर पास से देखने का ग्रवसर तो विरलों को मिलता है। पर जब वह घोंसले में बैठी ग्रंडे सेती है, तो चाहे बिलकुल पास खड़े हो जाग्रो, पर वह पलक तक नहीं झपकती! बुत बन जाती है। उसे ग्रपने रक्षात्मक रंग पर बेहद भरोसा होता है। वे इतनी भली होती हैं कि उनको छू कर सहलाया तक जा सकता है। पर यह करने की कोई ज़रूरत नहीं। हालांकि यह मुर्गी है पर पालतू नहीं बल्कि जंगली है। कहीं डर के मारे घोंसले में ग्रंडे छोड़कर न चली जाये। ग्रौर इसमें तुम्हारा ही तो दोष होगा कि जंगल में दर्जन भर रोयों से ढके सुंदर चूज़े नहीं पैदा होंगे।



फुरसा

पहाड़ों में सांझ का झुटपुटा गहराने लगता है और फुरसा सांप शिकार के लिए बाहर निकलते हैं। दिन में भी पत्थरों के बीच छिपे इन सांपों को देख पाना इतना आसान नहीं और सांझ के झुटपुटे में तो बिलकुल असंभव है। बस हल्की-सी सरसर सुनाई पड़ती है, ज़रा संभल के चलो! आख़िर फुरसा भयंकर रैटल सर्प का सबसे निकट 'संबंधी' है।

रैटल सर्प की तरह उसकी भी नाक और आंख के बीच एक विशेष गर्त है – जिससे वह अंधेरे में अपने शिकारों को उनके शरीरों की गर्मी के कारण देख लेता है। यह सांप गर्त घोणसों की श्रेणी में आता है। रैटल सर्प की तरह वह भी गुस्से में अपनी पूंछ हिलाने लगता है – अगर उसकी पूंछ पर भी 'झुनझुना' (रैटल) होता तो वह भी रैटल सर्प से उन्नीस नहीं होता। यद्यपि फुरसा इतना विषैला तो नहीं जितना कि रैटल सर्प होता है पर उसका दंश भी बहुत ख़तरनाक होता है।

निःसंदेह, वह कभी भी पहले हमला नहीं करता। वह कदमों की आहट सुनते ही रास्ते से हटने का प्रयास करेगा पर सभी विषैले सांपों की तरह वह भी काफ़ी फुर्तीला नहीं होता। इसलिए सांझ के झुटपुटे में पहाड़ों में टहलते समय अकसर नीचे देखते हुए चलना चाहिए।



भालू

जंगल में भालू का होना ज़रूरी है। भालू के बिना भला कोई असली जंगल होता है, ऐसे जंगल में तो मज़ा भी नहीं आता।

उधर देखो भालू पेड़ों से घिरे मैदान में निकला। वह घास नोचने, मिट्टी कुरेदने, ज़मीन पर गिरी टहनियों और पत्थरों को उलटने-पलटने के लिए निकला है।

टहनियों की छाल छीलकर चींटियों और इल्लियों, पत्थरों को पलटकर उसके नीचे की नमी में दुबके कीड़ों और भृंगों को चाट जाता है। पांचे की तरह विशाल पंजे से वह चूहों के बिलों को खोद डालता है। उसके जबड़े चपड़-चपड़ चलने लगते हैं। पर घास उसे इतनी पसंद नहीं: चबाते-चबाते सिर हिला रहा है, होंठ बिचकाकर थूक रहा है।

भालू को बस खाने की ही चिंता लगी रहती है। इसी लिए तो वह इतना गोल-मटोल होता है, धूप में उसकी खाल भी झिलमिलाती है। जंगल में भालू किसी से नहीं डरता, सिवाए... सिवाए आदमी की गंध के! इसी-लिए वह हमेशा सूंघता रहता है। आदम गंध मिलते ही फ़ौरन चंपत हो जाता है।



बहुत पुरानी बात है – एक बार धरती फट गयी और वहां गहरा बैंगनी-किरमिजी दर्रा प्रकट हुआ। नीचे देखने पर ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह जाती है, चक्कर आने लगते हैं। दर्रे की तली में रोड़ी और रेत से ढकी सूखी नदिया का पाट किसी पुरानी सड़क की तरह लगता है।

इस 'सड़क' पर चलते समय लगता है कि उसने तुम्हें किसी प्राचीन कालग्रस्त नगर में पहुंचा दिया हो, कि दोनों ओर चट्टानें नहीं बल्कि भवनों और मंदिरों के खंडहर हों।

ये देखो बुर्जोंवाले प्राचीन दुर्ग, तोरणद्वारों युक्त, परकोटों पर पुल बने हैं।

मीनारों और बुर्जियोंवाले किले, गिरजों और मसजिदों के टेढ़े गुम्बद। घरों के भग्नावशेष : गिरी छतें, दरवाज़ों और खिड़कियों के काले विवर, उखड़ी पैड़ियां। और लगता है कि मानो दबा-दबा-सा कोलाहल, छकड़ों की चूं-चूं, घोड़ों की टापें, महमेज़ों और तलवारों की खड़खड़ सुनाई पड़ रही हों। और सांस रुक-सी जाती है किसी अनहोनी की प्रतीक्षा में, अनायास ही पीछे मुड़कर देखने की इच्छा होती है...

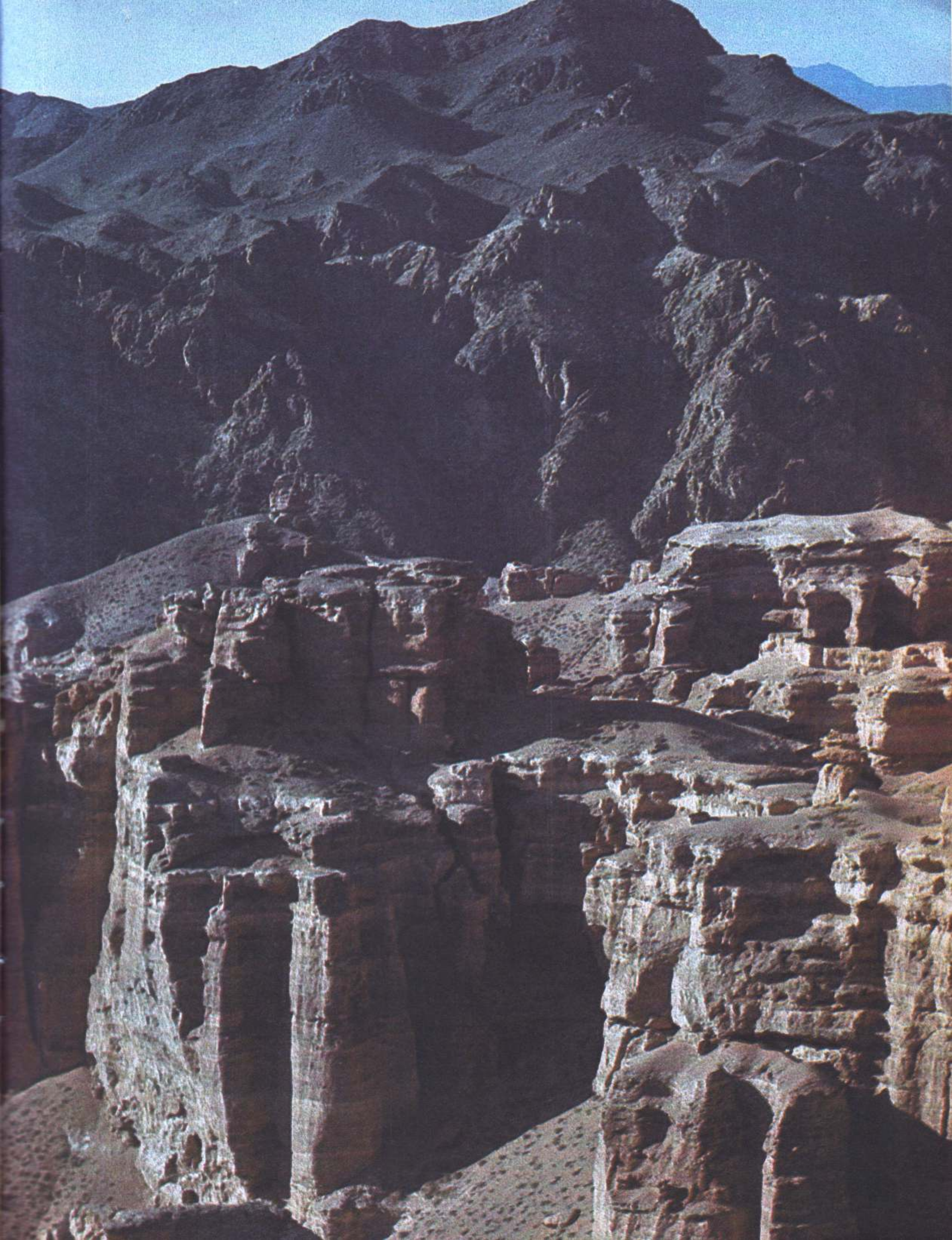
पर निर्जनता, नीरवता और तपिश के अलावा और कुछ नहीं। दर्रा झुलसाती गर्मी से लबालब भरा है और उसकी दीवारें किरमिजी आग से तपी हैं।

तोरण और दुर्ग गर्मी में हिलते-से लग रहे हैं और प्रकृति के हाथों निर्मित तिलस्मी बैंगनी नगर मृग मरीचिका की तरह हिलोरे ले रहा है।



बैंगनी दर्रा





शैल तीतर

शैल तीतर चट्टानों और पत्थरों के ढेरों पर रहते हैं। उन्हें कभी-कभी पहाड़ी मुर्गी भी कहा जाता है क्योंकि पहाड़ों में अकसर उनकी मुर्गियों जैसी कुट-कुट सुनाई पड़ती है।

शैल तीतर शाम को सोने से पहले और सूर्योदय के समय सबसे अधिक कुट-कुट करते हैं। तब लगता है मानो सभी ढलानें और पत्थर कुट-कुट कर रहे हों—पहाड़ नहीं कोई दड़बा हों! पर मुर्गियां नहीं दिखाई देतीं।

शैल तीतर केवल उड़ते या दौड़ते समय ही दिखाई देते हैं। उड़ते समय वे तीर की तरह नीचे जाते हैं मानो पेट के बल ढलान पर फिसल रहे हों। और ऊपर सदा ढलान पर दौड़कर जाते हैं: लगता है कि मोटी-मोटी बोतलें लाल टांगों पर दौड़ रही हों और रोड़ी पर किच-किच करती। दुबककर बैठे शैल तीतर को देख पाना असंभव है। हमारे लिए ही नहीं बल्कि उकाब और बाज़ तक पास से निकल जाते हैं! शैल तीतरों के बिना चट्टानों के ढेर सूने लगते हैं और चट्टानों के बिना शैल तीतर जी नहीं सकते।



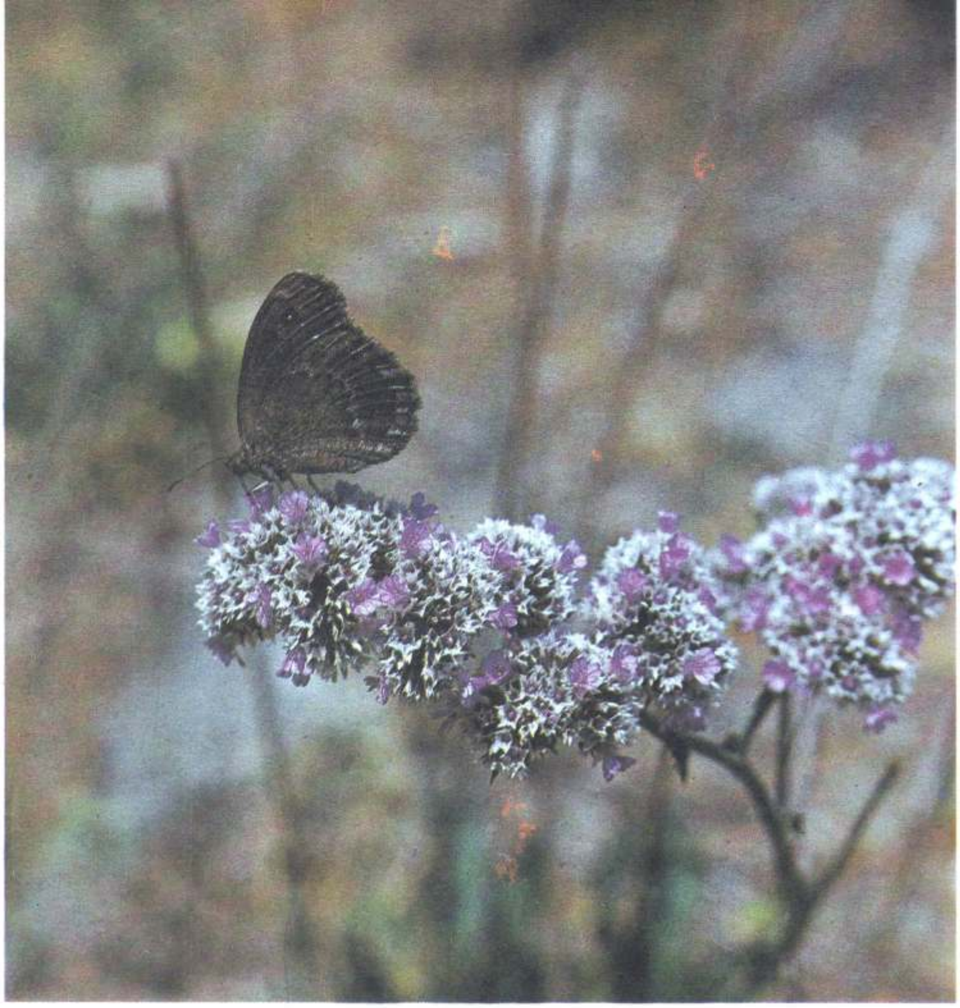
मार्मोट



शिला खंडों के बीच से न जाने तेज़ सीटियां या तीखी चीखें सुनाई पड़ रही हैं। ये गोल-मटोल मार्मोट धूप सेंकने के लिए अपनी मांदों से निकले हैं। वे सीधे बैठे ऐसे लग रहे हैं मानो किसी ने पुआल की नन्ही-नन्ही पूलियां धूप में सुखाने के लिए रख दी हैं।

कुछ बैठकर उन्होंने इधर-उधर नज़रें दौड़ायीं, हवा को सूंघा और पत्थरों पर पेट के बल पसर गये। अब वे पत्थरों पर बिछी मखमली गद्दियों जैसे लग रहे हैं। 'गद्दियां' उबासियां ले रही हैं, आंखें मिचमिचा रही हैं, ऊंघ रही हैं।

बन-संजली की कंटीली झाड़ियों पर तितलियां मंडरा रही हैं। चट्टानों पर कठफोड़े चिल्लपों कर रहे हैं, पत्थरों के ढेर में बैठा शैल तीतर कुट-कुट कर रहा है। हवा के झोंके कठगुलाब की झाड़ी को झकझोरते उसकी पीली पंखुड़ियां झाड़ रहे हैं। पर मार्मोटों को इस सबसे क्या लेना देना वे तो आराम से ऊंघ रहे हैं।





फूल और तितलियां

जहां फूल होते हैं वहीं तितलियां होती हैं, जहां तितलियां होती हैं, वहीं फूल होते हैं। फूलों और तितलियों का चोली-दामन का साथ है, वे एक-दूसरे के बिना जी नहीं सकते। तितलियां फूलों को पराग से सींचती हैं और वे बदले में उन्हें मकरंद देते हैं। अगर तितलियों को उड़ते फूल कहा जाता है तो फूलों को भी सुप्त तितलियां कहा जा सकता है।

सूखे दर्रों में कोई ख़ास फूल नहीं होते, पर हर फूल यहां अलग नज़र आता है, हरेक का अपना सौंदर्य, हरेक की अपनी मौलिकता है। एक इतना कंटीला होता है कि उसे छूते हुए डर लगता है। दूसरा इतना चटकीला होता है कि आंखें चौंधिया जाती है! कोई फूल इतना सादा होता है कि फ़ौरन दिखाई तक नहीं देता। यहां पोस्त के फूल बड़े विचित्र हैं, लाल रंग के नहीं बल्कि सुनहरे। डेज़ी के फूल भी बड़े अजीब हैं–पंखुड़ियों के बिना पीले 'बटन' की तरह। अविनाश फूल नन्ही जामनी मालाओं की तरह लटके हैं।



ग्रौर फूलों की सुगंधें कितनी विविध हैं! कभी वे शहद की तरह मधुर, तो कभी नागदौने की तरह कसैली, कभी सिरके की तरह खट्टी या मिर्च की तरह तीखी लगती हैं। ग्रौर सुगंधों की इन धाराग्रों में तैरती हुई हल्की-फुल्की तितलियां ग्रौर भारी-भरकम भृंग ग्रौर भौंरे इन चटकीले विचित्र फूलों की ग्रोर जा रहे हैं।



दर्रे में तपिश भरी है, पानी के नाम पर यहां न ग्रोस का एक कण है, न बारिश की एक बूंद। बस फूलों में ही नमी के कण बचे हैं। यहां तो मीन-मेख निकालने का कोई सवाल ही नहीं उठता, चाहे कितना ही छोटा ग्रौर नगण्य फूल क्यों न हो हरेक का बड़ा महत्व है। ग्रविनाश के फूल कितने नन्हे होते हैं पर तितली ने उन्हें खोज निकाला। हर फूल में मकरंद का कण ही होता है वह भी बस सूंड़ को भिगोने लायक ही, पर कहते हैं न कि बूंद-बूंद से सागर भरता है! बस तितली भी इस प्रकार पेट भरकर जीवित रहती है।

फूलों की ग्रोर देखो तो तुम्हें तितलियां दिखाई पड़ेंगी, तितलियों पर नज़र रखो ग्रौर वे तुम्हें सब फूल दिखा देंगी। फूलों ग्रौर तितलियों का चोली-दामन का साथ है। ग्रौर वे सब विविध, सुंदर, ग्राश्चर्यजनक हैं।



उकाब

पहाड़ों में भी उकाब अकसर नहीं दिखाई पड़ते। यह विलक्षण पक्षी बहुत दुर्लभ हो गया है। और उकाबों के बिना तो पर्वत वैसे ही सूने होते हैं जैसे सीगलों के बिना सागर या भरतपक्षियों के बिना स्तेपी।

जब उकाब शिकार करता है तो यह देखने लायक दृश्य होता है।

वह पर्वत की मेखला के ऊपर उड़ा नहीं कि सभी थलचर दुबक जाते हैं।

ढलान पर उकाब की परछाई फिसलती जाती है और पर्वतों के नन्हे जीव थर-थर कांपने लगते हैं, डर के मारे आंखें मूंद लेते हैं।

उकाब डैने फैलाकर मंडरा रहा है, वह धीरे-धीरे अपना चोंचवाला सिर इधर-उधर घुमाता जा रहा है और उसके डैनों से टकराती हवा सांय-सांय कर रही है।

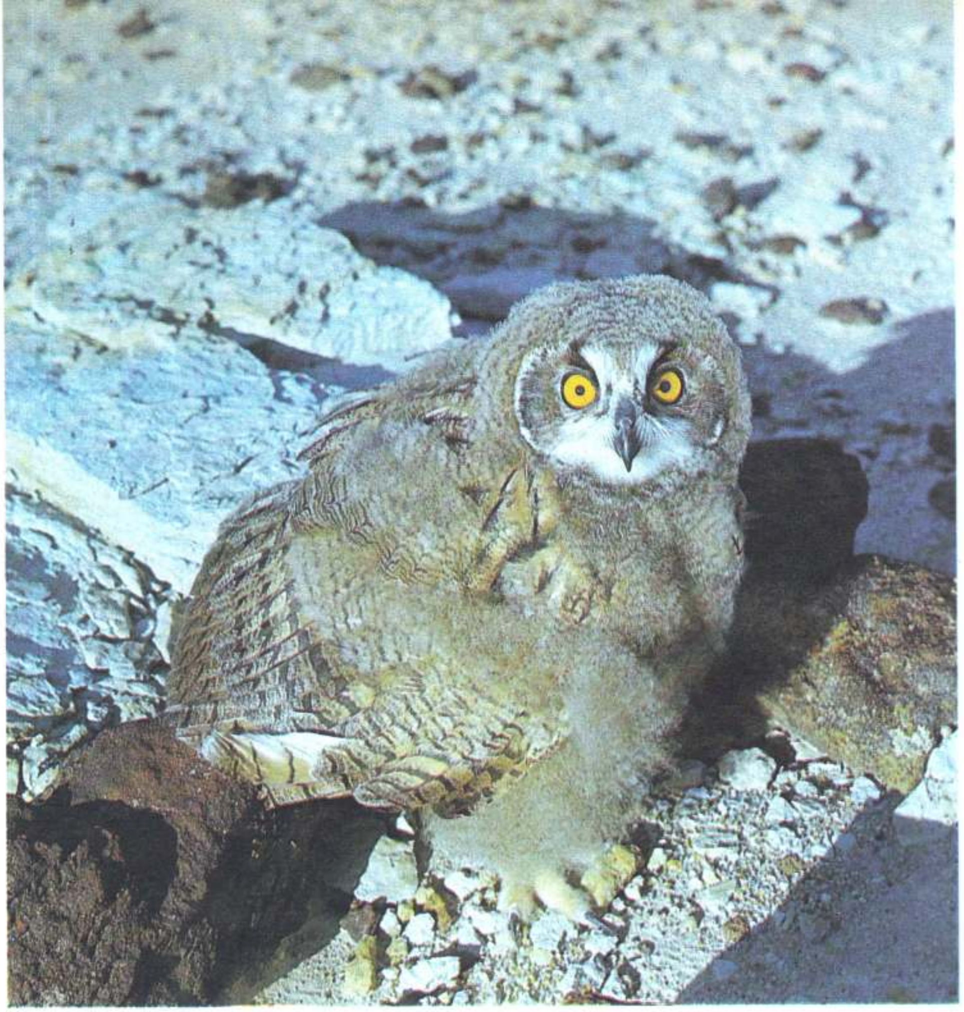


उकाब के बच्चे



घोंसले में तीन भाई – उकाब के बच्चे रहते हैं : छोटा, मंझला और बड़ा। उकाबों के घोंसलों में हमेशा यही होता है : सब बच्चों की उम्र भिन्न-भिन्न होती है। और यह होता इसलिए है कि मादा उकाब बड़े अंतराल से अंडे देती है। वह पहला अंडा देते ही उसे सेने बैठ जाती है।

जीवन के पहले दिनों उकाब के बच्चे एक-दूसरे के ऊपर ढेर-सा बनाकर लेटे रहते हैं, तब वे उकाब के बच्चे नहीं, बल्कि मुर्गी के रोयेंदार चूज़ों से लगते हैं। फिर वे पतली टांगों पर बैठ जाते हैं। और जब उनके पर निकल आते हैं, उनका रंग कत्थई हो जाता है और पंजे मज़बूत, वे ख़ूंख़्वार पक्षी लगने लगते हैं। पर वे इसी तरह और कोई डेढ़ महीने तक घोंसले में खड़े रहते हैं। घोंसले में लेटे-लेटे, खड़े-खड़े बड़ी ऊब होती है, न जाने मम्मी-पापा कब आयेंगे खाना लेकर। ऊब में वे इधर-उधर नज़रें दौड़ाते हैं, उन चट्टानों को निहारते हैं जिनके बीच उन्हें रहना है। अपने डैनों की सफ़ाई करते हैं या डैने फड़फड़ाकर व्यायाम करते हैं। जीवन में यह सब काम आयेगा। वह दिन आयेगा जब उकाब के बच्चे घोंसला छोड़कर चले जायेंगे। अपने बलिष्ठ डैनों को फड़फड़ाकर बादलों के बीच पहुंच जायेंगे। तब वे देखेंगे कि वह जगत कितना विशाल है जिसमें उन्हें अब रहना है।



उल्लू

रात को चट्टानों के बीच उल्लू हूंक रहे थे – शायद कहीं पास ही में उनका घोंसला है। डकैतों ने बड़ा अच्छा स्थान चुना है : यहां ख़रगोश भी और शैल तीतर भी, कबूतर भी और तेलियर भी बहुतायत में हैं।

दिन में मैंने इन डकैतों का अड्डा खोज लिया – वह कगार पर एक गुफा में था। दरारों से छनकर अंदर आती नीली किरणें गुफा में लाल-सी शिला पर प्रकाश डाल रही थीं। शिला पर पक्षियों के राजा की तरह सिंहासन पर बैठा उल्लू ऊंघ रहा था। मेरी आहट पाकर उसने चौंककर आंखें फाड़ीं, फुफकारा, चोंच किटकिटायी और खिसियानी बिल्ली की तरह गुफा से भाग गया।



'सिंहासन' के पास हड्डियां, मांस के अनपचे टुकड़े पड़े थे। अब मैं पता लगा सकता हूं कि डाकू ने किसकी हत्या की। पर मैं बेकार ही उल्लू पर नाराज़ हुआ। वहां मुझे एक भी पंख नहीं मिला : न शैल तीतर का, न कबूतर का और न ही तेलियर का। बस हानिकर चूहों, हैम्स्टरों, गोफ़रों आदि की ही हड्डियां और खालों के टुकड़े पड़े थे।

मतलब उल्लू इतने बुरे नहीं हैं हालांकि देखने में बड़े डरावने लगते हैं, और उनकी आवाज़ें इतनी मनहूस लगती हैं, विशेषकर रात को।



तोलाई

झाड़ी की शीतल छाया में तोलाई ख़रगोश सो रहा है। कान पीठ पर लिटा कर, अपनी गोल-मटोल ठोड़ी को पंजों पर टिका कर। सो रहा है।

मैं ख़रगोश के इतने पास पहुंच गया कि उसे पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाने की देर है, उसे मेरी आहट नहीं मिली। मैं पास खड़ा दुविधा में पड़ा हूं कि अब क्या करूं! अचानक ख़रगोश की मूंछें हिलीं, उसने नाक सिकोड़ी, पलकें धीरे-धीरे उठीं और ख़रगोश की आंखें फैल कर चौड़ी हो गयीं!

ख़रगोश की बादामी, सुनहरी चमकवाली सुंदर आंखों में अचानक भय की कालिमा छा गयी, वे संत्रास से फूल-सी गयीं! और ख़रगोश उल्लू जैसा लगने लगा।

मैं सांस रोके, पलक झपके बिना खड़ा था, मुझे ख़ुद ख़रगोश की चिंता हो रही थी। पर ख़रगोश अचानक शांत हो गया। सुस्ता कर ज़मीन पर लेट गया और कुलबुलाकर... सो गया। मुझे उसने ठूंठ समझ लिया, क्योंकि मैं बिना हिले-डुले ठूंठ की तरह जो खड़ा था। और ठूंठ से तो ख़रगोश भी नहीं डरते।

धीरे-धीरे उल्टे पांव मैं वहां से चला गया। ख़रगोश जब फिर से आंख खोलेगा, तो शायद बड़ा हैरान होगा। यहां ठूंठ खड़ा था, कहां गया?



लाल टीले

नीरस धूसर स्तेपी में अचानक ये टीलों की शृंखलाएं आयीं कहां से, ऊपर से चटकीले लाल रंग की!

पहले तो सोचा कि कहीं मृग मरीचिका तो नहीं है? पर स्तेपी में मृग मरीचिका क्षितिज पर पानी की तरह हिलोरे लेती धुंध जैसी होती है। लगता है कि कोई नदी, या झील हो, और झील में टापू तैरते हैं।

पर ये टीले तो नहीं तैर रहे, बिलकुल स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। उनकी ढलानें कहीं-कहीं पानी से कटी हैं, चोटियों को हवाओं ने चपटा कर दिया है।

लाल टीलों का पूरा जमघट है, उनकी टेढ़ी-मेढ़ी घाटियां अपनी ओर खींचती हैं। तोदों और मोड़ों के पीछे झांककर देखने की इच्छा होती है। लाल खुरदरी दीवारों के बीच चलते हुए आंखें सम्मोहित हो जाती हैं और कान चौकस। चौड़ी आंखोंवाला उल्लू काले विवर से निकलकर अपने चौड़े और मुलायम डैने फड़फड़ाता हुआ मोड़ के पीछे विलीन हो गया। अपने कड़े डैनों से सीटी-सी बजाती सुरख़ाबें कंगनी से उड़ीं। अजीब-से रेगिस्तानी बुलफिंच पक्षी बिलों के पास बैठे बिल्ली के बच्चों की तरह म्याउं-म्याउं कर रहे हैं।

नन्हे बैओबाबों जैसे विचित्र पौधे दिखाई दे रहे हैं। पोस्त के अजीब से पीले फूल दमक रहे हैं। यहां कोमल लताएं गोले में लिपटी कांटाचूहों की तरह लगती हैं। कोमलतम अपरिचित फूलों की गुलाबी झाड़ियां हैं जिन्हें छूते ही उंगलियों में ख़ून निकल आता है। और सर्वत्र नमक की सफ़ेद पपड़ी जमी है, मानो लाल मिट्टी पर सफ़ेद बर्फ़ जमी हो।

लाल टीलों का विचित्र जगत है, जहां विचित्र पक्षी और पेड़-पौधे हैं।







धारीदार छिपकली

धारीदार छिपकली — जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है वह पूरी धारियों से ढकी है! उसके बारे में और क्या कहें? वह सुडौल, चपल और फुरतीली होती है। रेतीली और चिकनी मिट्टीवाले स्थानों में रहती है, अपने और पराये बिलों में शरण लेती है। दिन के समय गुबरैलों, टिड्डों, मकड़ियों, चींटियों आदि का ज़मीन पर, घास में और छोटी-छोटी झाड़ियों पर चढ़ कर शिकार करती है। शिकार के बाद धूप सेंकती है। और रात रेत में गड़कर या बिल में छिपकर बिताती है।

रेत ही में अंडे देती है। गर्मियों में अंडों से कोई एक सेंटीमीटर लम्बे बच्चे निकलते हैं। वे भी मां की तरह सुंदर और धारीदार होते हैं।

बस और क्या बताऊं। और जिसे यह कम लगा वह ख़ुद इस छिपकली का अध्ययन करे और दूसरों को भी बताये।

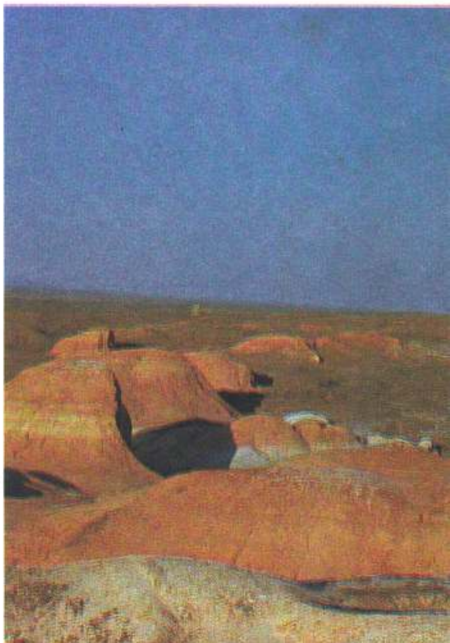


गुबरैला

सबसे प्रसिद्ध भृंग–पवित्र गुबरैला ही है! प्राचीन मिस्रवासियों की मान्यता के अनुसार गुबरैला सूरज के गोले को आकाश में लुढ़काता था। पर अब तो सब जानते हैं कि गुबरैला सामान्य भृंग है। पर फिर भी यह बड़ा विलक्षण है: उसे गोबर की गोलियां बनाना और उन्हें ज़मीन पर लुढ़काना आता है। और तो और अपने सिर पर खड़ा होकर!

गोबर की गोली गुबरैले के लिए आहार का भंडार है। और वह उसे बड़ा संभाल कर रखता है। पर ईर्ष्यालु प्रतिद्वंद्वी उससे यह गोली छीनने की कोशिश करते हैं। बस छीना-झपटी शुरू हो जाती है।

पर ये तो बाद की बातें हैं पहले तो गोबर की गोली बनानी है। गुबरैला गोबर का टुकड़ा तोड़ता है और उसपर बैठकर गोली बनाने लगता है। ख़ुबानी जितनी बड़ी गोली बनाकर गुबरैला सिर के बल खड़ा हो जाता है और टांगों से गोली को लुढ़काने लगता है। यह काम बड़ा कठिन और झंझट का है: कभी गोली किसी दरार में फंस जाती है और उसे निकालना पड़ता है तो कभी वह ढलान से लुढ़क जाती है–ढकेलते हुए उसे ऊपर लाओ। और ईर्ष्यालु गुबरैले भी तो नाक में दम किये रहते हैं, हरेक छीनने की कोशिश में लगा रहता है...

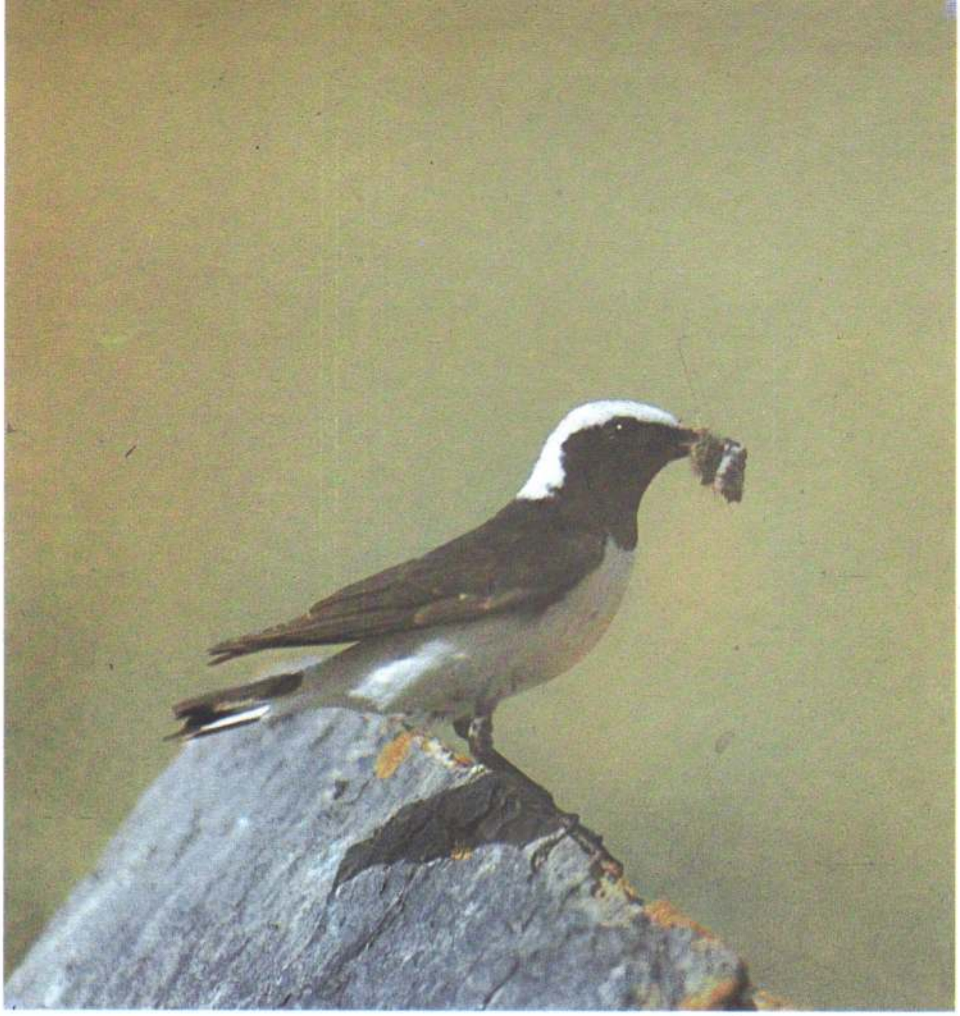




अपोलो तितली

तितलियों को सुखाकर संग्रहित करने के शौकीनों के कारण सभी तितलियों को न जाने क्या-क्या मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। पर शायद सबसे अधिक मुसीबतें अपोलो तितलियों को झेलनी पड़ती हैं – उनको सबसे अधिक पकड़ा जाता है। ये तितलियां बेहद सुंदर और विविधरंगी होती हैं। और हर संग्रहकर्ता अपने संग्रह के लिए विभिन्न रंगों की अधिक से अधिक अपोलो तितलियां पकड़ने के फ़िराक में रहता है।

स्पष्ट है कि संग्रहों में जितनी अधिक तितलियां होंगी, फूलों पर उतनी ही कम। बहुत से देशों में सुंदर तितलियां दुर्लभ हो गयी हैं और उनको संरक्षित घोषित किया जा चुका है। सोवियत संघ में भी ऐसी तितलियों की सूची बनायी गयी है। और सबसे पहले उसमें बर्फ़ की तरह सफ़ेद परों पर लाल-लाल बिंदियोंवाली तितली अपोलो का नाम दर्ज किया गया है।



कामेन्का-प्लेश्चान्का

बड़ा विचित्र नाम है इस पक्षी का! कामेन्का इसलिए कि वह पत्थरों के बीच रहता है; रूसी में पत्थर को 'कामेन' कहते है। प्लेश्चान्का इसलिए कि उसके सिर पर सफ़ेद निशान होता है जिससे वह गंजा लगता है, रूसी में गंजेपन को 'प्लेश्च' कहते हैं। जीवन भर कामेन्का पक्षी पत्थरों के बीच रहते हैं, यहीं बैठकर दम लेते हैं, यहीं अपने को संवारते हैं। पत्थरों पर बैठकर ही अपने शिकार: कीड़े-मकोड़ों, टिड्डे-पतंगों को खोजते हैं। अपना घोंसला भी किसी बड़े पत्थर के नीचे किसी बिल में बनाते हैं।

उसके बच्चे भी थोड़ा बड़े होने पर घोंसले में बैठना पसंद नहीं करते बल्कि बाहर निकल कर पत्थरों पर बिखर जाते हैं—धूप सेंकने के लिए, कुछ वर्ज़िश करने के लिए, या ऐसे ही इधर-उधर नज़रें दौड़ाने के लिए, क्या पता कोई मक्खी-वक्खी भी पकड़ में आ जाये।



ख़तरे का आभास होते ही चूहों की तरह झट से बिल में घुस जाते हैं! और सूनी ढलान पर खाली पत्थर ही पत्थर रह जाते हैं। बस एक पत्थर पर घोंसले से दूर हट कर कामेन्का मां बैठी धीरे-धीरे चिल्लपों मचाती है। घबराहट तो उसे होती है पर इतनी नहीं, उसे मालूम है कि उसके बच्चे पत्थर के नीचे छिपे हैं, उन्हें देख या पकड़ पाना असंभव है।





गिद्ध

कहते हैं कि भेड़ियों का पेट उनकी टांगें भरती हैं, और गिद्धों का – उनकी आंखें। आंखें उनकी छोटी होती हैं पर होती बड़ी पैनी हैं। उन्हें सब कुछ दिखाई देता है : सैगा हिरणों का चलता झुंड और सोते हुए सैगा हिरनौटे भी, भेड़िये और उनके शिकार की जूठन भी, बड़े-बड़े ऊंट भी और मुश्किल से दीखनेवाले गुबरैले भी। भेड़ को हलाल करनेवाला चरवाहा भी। गिद्ध एक-दूसरे पर भी नज़र रखते हैं। आहा! पड़ोसी ने पंजे निकाले, डैने समेटे और नीचे की ओर गोता लगाया, मतलब उसे ज़मीन पर कुछ काम की चीज़ नज़र आयी है! जल्दी से उसके पास पहुंच जाना चाहिए, दूसरों के आने से पहले।

पर दूसरे गिद्ध-पड़ोसियों ने भी देख लिया, वे भी चट्टानों से उड़े, नीचे उतरने लगे। अभी तो आकाश में एक ही गिद्ध दिखाई दे रहा था, और यह पूरा झुंड आया कहां से? वे चकराते-मंडराते ज़मीन पर उतर रहे हैं। भारी डैनों को ज़मीन पर घसीटते, झूलते हुए दौड़ रहे। आपस में धक्का-मुक्की कर रहे हैं, एक-दूसरे से शिकार छीन रहे हैं। और फिर पेट भर कर थके टर्की मुर्ग़ों की तरह ज़मीन पर पसर कर ऊंघने लगेंगे, फिर से भूख लगने तक।



भाटतीतर के बच्चे

दूर से देखने से लगता है कि भाटतीतर ज़मीन पर चलते नहीं बल्कि रेंगते हैं। उनके पैर इतने छोटे होते हैं और वह भी बड़े विचित्र : पंजों की उंगलियां मोटी, रोयों से ढकी और कसकर नन्हे से 'खुर' में भिंची होती हैं।

अगर भाटतीतर तुम्हें देखकर नहीं उड़ा बल्कि रेंगता ही जा रहा है तो रुक जाओ! कहीं पास ही में उसके बच्चे हैं।

भाटतीतर के बच्चे बेहद प्यारे होते हैं। वे इतने नन्हे होते हैं कि उन्हें देख पाना बड़ा कठिन है, पैर के नीचे आने में देर नहीं लगती। ध्यान से नीचे देख-देखकर चलो। बेहतर तो यही होगा कि सावधानी से कदम रखते हुए यहां से चले जाओ।

निराश होने की कोई ज़रूरत नहीं कि तुम उन्हें देख नहीं पाये, हमने तुम्हारे लिए विशेष रूप से उनका फ़ोटो खींचा है। यह रहा उनमें से एक चूज़ा। जितना जी चाहे देखते रहो। वे भी इसे देख सकते हैं जो कभी स्तेपी में गये भी नहीं। और वे भी जो वहां गये थे पर भाटतीतर की घबराहट को देखकर, उसके बच्चों को देखे बिना सावधानी से कदम रखते उल्टे पांव लौट गये...



• • •

सोवियत संघ में प्रकृति के ऐसे अनेक अद्भुत कोने हैं, जहां अतिसुंदर तितलियों या पक्षियों को देखा जा सकता है, जहां दुर्लभ और बहुप्रचलित जीव-जंतु विचरते हैं...

और हर देश में भी अपने अनोखे, सुंदर वन, झीलें, पर्वत और स्तेपियां-रेगिस्तान हैं। यह सब हमारी आम पृथ्वी की संपदा है। वह इंद्रधनुष की तरह उज्ज्वल और बहुरंगी है। हमारी कामना है कि उसकी आभा कभी धूमिल न हो।



प्यारे बच्चो,

यह किताब कैसी लगी तुम्हें? अच्छी है न? हमें अपनी राय लिखना। इसे जानकर हमें बड़ी खुशी होगी और हम तुम्हारी पसंद की नयी-नयी किताबें छापेंगे। हमारा पता है:
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।



लाल स्तेपी नारंगी खंडहर पीला टीबा हरी घाटी



आसमानी झील नीले पर्वत बैंगनी दर्रा लाल टीले

निकोलाई इवानोविच स्लाद्कोव को यायावरी का शौक है। रेगिस्तानों में जाकर वे गहरे कूपों की तली में उतरे, पामीर पर्वतों की कंदराग्रों ग्रौर हिमनदों का ग्रध्ययन किया, ग्रसीम स्तेपियों का कोना-कोना छान डाला, जलमग्न होकर यात्राएं तक कीं। ग्रौर कैमरा सदा उसका साथी रहा। प्रत्येक नयी भेंट, ग्रज्ञात से प्रत्येक परिचय निकोलाई स्लाद्कोव के लिए हर्षदायी, पर्व के समान होते हैं। ग्रौर वह ग्रवश्य ही ग्रपनी पुस्तकों में उस सब के विषय में बताते हैं जो उन्होंने देखा ग्रौर जाना, ग्रौर उसके विषय में भी जो ग्रभी तक रहस्य ही है। वह बड़े ग्राकर्षक ढंग से, हार्दिकता ग्रौर विनोद के साथ वर्णन करते हैं। स्लाद्कोव का सपना है कि बच्चे प्रकृति के रोचक, बहुरंगी, विविध जगत को समझना ग्रौर उससे प्रेम करना, सभी जीव-जंतुग्रों का ग्रादर, उनका ख़याल रखना सीखें।